सिद्ध योग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक पत्र

संस्थापक, सम्पादक तथा संरक्षक

योगिराज अनन्त श्री चन्द्रमोहन [illegible]

वर्ष ७

अङ्क ५

वार्षिक मूल्य
१० रुपया

एक अंक
१ रुपया

अगस्त
१९६९

सद्गुरु—वन्दन

★ हे सद्गुरुराज तुम्हारी जय हो।

★ हे विश्वम्भर, विश्वबीज, परमपुरुष, मोक्षध्वज तुम्हारी जय हो।

★ तुम्हारे अभयरूपी हाथों से यह माया उसी प्रकार नष्ट हो जाती है जैसे सूर्य्य के प्रकाश से अन्धकार।

—समर्थ स्वामी रामदास

श्री सिद्ध गुफा प्रकाशन, सवांई एत्मादपुर जिला आगरा।

प्रकाशक :—
श्री सिद्ध गुफा प्रकाशन
सर्वाई एमादपुर
आगरा

इस अंक में :—

लेख	लेखक	पृष्ठ
१. कल्याण-कामना	....	१.
२. दुःख क्या ?	अनन्त श्री चन्द्रमोहनजी महाराज	२.
३. उद्‌बोधन (कविता)	श्री सन्तबाजिन्दजी	१०
४. योग शक्ति और करुणा (कविता)	श्री वी० एस० शर्मा	११
५. सत्यम्-शिवम्- सुन्दरम्	श्री वनवासी	१३
६. श्री सद्‌गुरु महिमा —	श्री रामसुमेर उपाध्याय	१६
७. योग में गुरु की अपेक्षा	श्री डा० ऋषिराम शर्मा	१७
८. गुरु-शिष्य	स्व. साने गुरु	२४
९. सिद्ध पुरुष श्री सदाशिव ब्रह्म	स्वामीदत्त योगेश्वर	२५
१०. प्रमाद की दीवार	....	.३२
११. राम चरित मानस में योग का वर्णन	श्री विजय सिहं एम.एस सी	३४
१२. तीनमुक्तक (कविता)	श्री गौरीशङ्कर द्विवेदी, शङ्कर,	४६
१३. क्या एक गृहस्थी योगी बन सकता है	चौ. रामदास बी. ए.	४४
१४. समझा जिसने तुम्हें (कविता)	श्री मालपाणी	४६
१५. संगीत की योगात्मक- पृष्ठ भूमि	श्री गिरधर शर्मा संगीताचार्य —	४७
१६. जीवन और मृत्यु (श्री दिव्य)	टाइटिल का	३
१७. अनुपम सद्‌गुरु	,,,,,,	४

संयुक्त सम्पादक
श्री दिव्य

(श्री रामलाल प्रभवे नमः)

सिद्ध योग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक पत्र

वर्ष २
अङ्क ५

"ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्,
मर्त्यो मृत्योर्मुख विवरतो, मुक्ति माप्नोति सद्यः ।
तत्प्राप्यर्थान् बहुविशदयन् योगशास्त्रोपदेशान्,
कल्याणानां भवतु महतां सिद्धये 'सिद्धयोग: ॥

अगस्त
सन् १९६९

कल्याण की कामना

स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः
स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः ।
स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः
स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ॥

परमैश्वर्ययुक्त ईश्वर हमारा कल्याण करे । पुष्टिकर्ता, सर्वज्ञ ईश्वर हमारा कल्याण करे । तीक्ष्ण तेजस्वी, दुःखहर्ता ईश्वर हमारा कल्याण करे । बड़े-बड़े पदार्थों का पति हमारा कल्याण करे – ।

— यजुर्वेद

हमारा विशेष लेख—

दुःख क्या ?

(योगिराज अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज)

संसार में जन्म लेने वाला हर एक प्राणी दुः ख निवृत्ति के लिए हर समय प्रयत्नशील रहा करता है। किन्तु उसको पूर्ण रूपेण यह ज्ञान नहीं होता कि वस्तुतः दुःख किस वस्तु का नाम है। मुण्डे मुण्डे मतिभिन्ना के अनुसार संसार में जन्म लेने वाले प्राणियों की मतियें भिन्न-भिन्न हैं और वे लोग अपने अपने मति-भेद के अनुसार दुःख और सुख की कल्पनायें करते रहते हैं। किन्तु दुःख का स्वरूप क्या है यह बात हर एक व्यक्ति तथ्य रूप से समझ ही नहीं पाता, वस्तुतः तो विवेकी पुरुष के लिए जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त केवल मात्र सभी क्रिया-कलाप दुःख ही दुःख है। अपने मन से जिन विषयो को हम सुख के लिए स्वीकार करते हैं परिणाम में उनका स्वरूप दुःख के अतिरिक्त कुछ भी नहीं। हमें भगवान पतंजलि देव का योग-दर्शन बतलाता है कि—

'परिणाम ताप संस्कार दुःखैर्गुण वृत्ति विरोधाच्च दुःखमेव सर्वं विवेकिनः,–

अर्थात् परिणाम ताप संस्कार दुःख और गुण वृत्ति विरोधादि के द्वारा विवेकी पुरुष के लिऐ यह सारा संसार दुःखमय ही है। इस सूत्र पर भाष्य लिखते हुए भगवान श्री व्यास देव जी अपने शब्दों में इस प्रकार विवेचना करते हैं —

परिणाम दुःखता — न चेन्द्रियाणाम् भोगाभ्यायासेन वैतृष्ण्यं कर्तुं शक्यं कस्मात्तो भोगाभ्यास मनु विवर्धन्ते रागाः कौशलानि चेन्द्रियाणमिति, तस्मादनुपायः सुखस्य भोगाभ्यास इति, स खल्वयं वृश्चिक विषभीत इवाशीविषेण दृष्टो यः सुखार्थी विषयानुवासितो महति दुःख पङ्के निमग्न इति एषा परिणाम दुःखता ।

× × ×

अर्थात् इन्द्रियों को भोगाभ्यास से वितृष्ण करना संभव नहीं हो सकता। भोगाभ्यास से इन्द्रियों के राग और चपलतायें उत्तरोत्तर बढ़ती ही जाया करती हैं इसलिये भोगाभ्यास सुख प्राप्ति का साधन नहीं। जिस प्रकार से एक मनुष्य वृश्चिक के विष से डरा हुआ सर्प विष से खाया जाय तो वह वृश्चिक विष की अपेक्षा और भी अधिक दुःख सागर में पड़ जाया करता है क्योंकि इस प्रकार के

उपायों से इन्द्रियों के राग शान्त नहीं होते । भगवान मनुदेव ने मनुस्मृति में बिलकुल स्पष्ट कहा है कि,

न कामः कामानामुपभोगेन शाम्यतप्रत्युत हविषा कृष्णवर्तम् एव भूय भय एवाभिवर्धते ॥

अर्थात् इन इन्द्रियों के राग भोगाभ्यास से शान्त नहीं होते प्रत्युत जिस प्रकार अग्नि में घी डालने से उत्तरोत्तर अग्नि ज्वालायें बढ़ती ही जाया करती हैं इसी प्रकार इन्द्रियोपभोग से इन्द्रियों के राग भी उत्तरोतर बढ़ते ही रहते हैं । इसलिए संसार के सभी भोग परिणाम में दुःख के ही दाता हैं । भगवान भर्तृहरि जी ने परिणाम दुःखता को बताने को वैराग्य-शतक में एक बहुत अच्छा श्लोक लिखा है । यथा—

भोगे रोगभयं कुले च्युतिभयं,
वित्ते नृपालाद् भयं
माने दैन्यभयं बले रिपुभयं,
रूपे जराया भयं ।
शास्त्रे वादभयं गुणे खलभयं,
काये कृतान्ताद्भयं
सर्वं वस्तु भयावहंभुवि,
नृणां वैराग्यमेवाभयम् ॥

अर्थात् भोगों में रोगों का, ऊंचे कुल में पतन का, धन में राजा का, मान में दीनता का, बल में शत्रु का तथा रूप में वृद्धावस्था का भय है । इस तरह संसार में सभी वस्तुयें मनुष्य के लिए भय पूर्ण है ।

इसी का नाम परिणाम दुःखता है ।

तापदुःखता

दूसरे प्रकार के दुःखों को ताप दुःखता माना है ।

'ताप दुःखता' को समझाने के लिए अपने भाष्य में श्री व्यास देव जी ने निम्नांकित पंक्तियें लिखी है —

ताप दुःखता सर्वस्य द्वेषानुविद्धश्चेतन साधना धीनस्तापानुभव इति,तत्रास्ति-द्वेषजः कर्माशयः, सुख साधनानि च प्रार्थयमानः कायेन वाचा मनसा परिस्पन्दते, ततः परमनुगृह्णात्युपहन्ति च इति, परानुग्रह पीडाभ्यां धर्माधर्मा बुपचिनोति, स कर्मा शयो लोभान्मोहाच्च भवति इत्येषा ताप- दुःखतोच्यते ॥

अर्थात् चित्त में इन्द्रियों के राग-द्वेष पैदाहोते रहा करते हैं । जब किसी मनुष्य का कामाभिघात होता है । तो कामना पूर्ण न होने पर उसके मन में एक गहरी जलन हो जाती है । इससे मनुष्य कामनाओं के पूर्ण न होने से एक गहरी जलन का अनुभव करता रहता है । इसी का नाम ताप दुःखता है । यह दुःख भी परिणाम दुःख की तरह ही संसार के मनुष्यो को अनवरत

होता रहा करता है। अधिकांश संसार के लोग मानस ताप से तपते रहा करते हैं।

संसार दुःखता

संसार दुःखता को मोटे शब्दों में इस प्रकार समझ लेना चाहिए। जिस समय सुख संस्कारों का भोग-काल उपस्थित होता है उस समय सुख संस्कार ही अधिकांश सन्मुख आया करते हैं। किन्तु ये भी आवश्यक है कि क्लिष्टाक्लिष्ट संस्कार परस्पर एक दूसरे से अभि भूत रहा करते हैं। प्राणी जिन संस्कारों में सुख का अनुभव करता है उस समय उसकी वह सुख संस्कारानुभूति है। किन्तु ये अनुभूति कायम नहीं रहेगी। शास्त्र का नियम है 'चलं हि गुणं वित्तम्' अर्थात् गुण वित्त हमेशा चल है। तमोगुण के शान्त होने पर रजोगुण या सतो गुण उदित होते रहते हैं। इसलिए यह आवश्यक नहीं है कि सुख-संस्कारोपभोग वाला व्यक्ति हमेशा ही सुख संस्कारों का अनुभव करेगा। सुख संस्कारों का भोग काल समाप्त हो जाने के बाद उनकी स्मृति ही दुःखों का जनक बन जायेगी इसलिए संस्कारों का बनना और बिगड़ना भी प्राणी के लिए दुःख का ही दाता है। दुःख संस्कार तो मनुष्य को दुःखानुभूति कराते ही हैं किन्तु सुख संस्कार भी सूक्ष्म तत्व जानने वाले योगीराजों के लिए दुःख के ही जनक होते हैं।

सहज दुःखता

मनुष्य जन्म लेने के बाद मृत्यु पर्यन्त हजारों प्रकार के दुःखों का अनुभव करता रहता है जिसमें आध्यात्मिक 'आत्मानं स्वसंघातमधिकृत्य वर्त्तन इत्याध्यात्मिकं, तच्च द्विविधं शारीरं मानसं च. शारीरं व्याधादिजनितं मानसं कामादिजम्।' अर्थात् आत्मा के स्व संघात को अधिकृत करके जो दुःख आता है वह आध्यात्मिक दुःख कहलाता है वह भी हमारे शास्त्र में दो प्रकार का माना है। शारीरं मानसं वा, अर्थात् शारीर से सम्बन्ध रखने वाला और मन से सम्बन्ध रखने वाला शरीर और मन से संबन्ध रखने वाले दुःख हजारों प्रकार के संसार में देखने में आते हैं। जिनकी गहरी चोट को पाकर मनुष्य मौत के घाट उतर जाता है और उन पर काबू नहीं पा पाता। और उसका जीवन,जीवन काल में भी मृतक के समान ही रहा करता है। हमने अपने इस योग प्रचार के कार्यक्रमों में बहुत से इस प्रकार के दुःखी लोग देखे हैं जो हा हा कार करते हुए मौत को हर समय पुकारते थे। दमे के रोगी, ताऊन, तपेदिक के रोगी, हिस्टीरिया के रोगी, कैंसर के रोगी अपनी जिंदगी के दिनों को अंगुलियों पर गिनते रहते हैं किन्तु इतने गहरे दुःख को भोगते हुए भी वे लोग कठिन कर्म विपाक वश काल पुरुष को सामने नहीं देखते, थोड़ी बहुत जब दुःख निष्कृति दिखाई देती है तभी उनको दुनिआवी उलझनें तत्काल घेर लेती हैं। और उन उलझनों को उलझाते सुलझाते ही उनका अपना जीवन काल का ग्रास बन जाता है।

—एक उदाहरण—

जिस समय हमने सवांई ग्राम में आकर योग प्रचार का कार्य प्रारम्भ किया उसी पुराने समय की एक ब्राह्मणी की घटना हमें रह रह कर स्मरण आती है। वह देवी श्वास रोग के घोर कष्ट से पीड़ित थी इसका पति आश्रम में इलाज के लिए इसे लेकर आया। अकस्मात् जब वह उसे घोड़ी से नीचे उतार रहा था, उसी समय इस के शरीर पर श्वास रोग का घात हुआ और देखते ही देखते वह मृत्यु के समान लम्बे लम्बे श्वास लेने लगी। इसकी यह दशा बड़ी ही दयनीय थी। और आंखों से देखी नहीं जाती थी। करुण-क्रन्दन हो रहा था। इसके पतिदेव के मन में स्वयं यह भावना थी कि या तो इसका तत्काल ही प्राणान्त हो जाय अन्यथा किसी प्रकार इस व्याधि की निष्कृति हो जाय। अस्तु, यत्न किया गया और कई घण्टे के बाद वह देवी अपनी सहज स्थिति में आई। जब वह अपनी चेतना को पा गई तब हमने उससे पूछा कि ईश्वरानुग्रह से तेरा यह रोग हट जाये तो क्या तू परमात्मा का स्मरण किया करेगी। उसने हौसले के साथ उत्तर दिया कि हाँ महाराज जी यदि जिंदगी बच गई तो संसार में और काम ही मुझको क्या है। उसके सद्भावों को देखकर यौगिक चिकित्सा के द्वारा उसका उपचार हुआ और वह बिलकुल स्वस्थ हो गई। उसने बड़े आग्रह के साथ मुझे अपने घर निमंत्रण देकर बुलाया। वहाँ जाकर मैंने देखा कि वही बुढ़िया अपने घरेलू कार्यों में इतनी व्यस्त है कि उसको १० मिनट बात करने की भी फुरसत नहीं थी। उसके आंगन में एक खटिया पड़ी थी जो बीच से कटी थी जिसमें वह ६ साल तक अनवरत पड़ी रही और कटी हुई खाट का वह छिद्रही उसके मल मूत्र त्याग का एक साधन था। जब मैंने उससे बात की देवी क्या तू ईश्वर का थोड़ा बहुत चिन्तन करती है तो उसने उत्तर दिया कि ह महाराज जी ये मेरी दो धवती हैं इनकी शादी कर देने के उपरान्त ही अब मैं ईश्वर का भजन किया करूंगी। उसके बाद मेरा कोई काम शेष नहीं रहेगा। बेचारी बुढ़िया लड़कियों की शादी के स्वप्न देखती रही और देखते देखते ही काल का ग्रास बन गई। इसी प्रकार कामादि मानस विकारों के अन्दर मनुष्य जीवन भर सुख के स्वप्न लिया करता है। किन्तु वह नहीं समझ पाता कि यह विषैला कांटा है। काल कभी भी उसे खा जायेगा।

आधि भौतिक दुःख

व्याघ्नादीन् लक्षीकृत्य जायत इत्याधि-

भौतिक व्याघ्राद्युत्थम्, अर्थात् व्याघ्र शेर भालू आदि से पैदा हुआ दुःख आधिभौतिक कहलाता है और यह भी मनुष्य पर हर समय आक्रान्त ही रहता है। कह नहीं सकते किस समय प्राणी इस दुःख से आक्रान्त होकर संसार से विदा हो जाय।

आधिदैविक दुःख

देवानामपि कृत्य जायत इ-याधिदैविकं शीतोष्णाद्युत्थमित्यर्थः, देवों के अधिकार पूर्वक जो दुःख मनुष्य को प्राप्त होते हैं वह आधि-दैविक दुःख कहलाते हैं। जिसमें ग्रह नक्षत्रादि की पीड़ाओं से एवं सर्दी गर्मी आदि से जो दुःख होते हैं वह सभी आधि दैविक माने जाते हैं इनसे मनुष्य प्रायः आक्रान्त ही रहता है किन्तु दुःख सहने का इतना आदी बन जाता है कि वह इन दुःखों को दुःख समझ ही नहीं पाता।

गुण वृत्ति विरोध का दुःख

जिस सूत्र के आधार पर इस लेख की पंक्तियां लिखी गई हैं उसमें सबसे पिछला वाक्य है 'गुण वृत्ति विरोधाच्च दुःख मेव सर्वं विवेकिनः' अर्थात् कुछ दुःख परिणामी बताये गये, कुछ तापज बताये गये, कुछ संस्कारोद्भूत बताये गये और कुछ का आध्यात्मिक आधिभौतिक एवम् आधिदैविक रूप से दुःखों का निदर्शन कराया गया। उपरोक्त दुःख प्रायः सभी प्राणियों में व्याप्त रहते हैं। किन्तु गुण वृत्ति विरोध का दुःख इस प्रकार का है जो बड़े और छोटों में पिता-पुत्र में भाई और बहिन में, गुरु और शिष्य में पति और पत्नी में सर्वत्र समान रूप से व्याप्त दिखाई देता है। गुण वृत्तिविरोध का अर्थ है परस्पर स्वभाव का न मिलना। पिता सात्विकी प्रवृत्ति के हैं पुत्र रजोगुण प्रधान हैं। परस्पर स्वभाव नहीं मिलता। पुत्र सतोगुण प्रधान है प्रह्लाद आदि की तरह पिता तमसाभिभूत है हिरण्यकश्यप आदि की तरह परस्पर स्वभाव नहीं मिलता। यही एक नियम भाई-बहिन, पति-पत्नी आदि पर भी सामान्य रूप से लागू है, जिसके फलस्वरूप संसार के सभी प्राणी आज तक कभी भी एक मत नहीं हो पाये। और न ही ऐसा आगे होने की कोई संभावना है। इस प्रकार से विवेक ख्याति प्राप्ति पुरुष के लिए सारा संसार दुःख मय ही है। मनुष्य को क्षुधा लगती है किन्तु क्षुधा निवृत्ति का साधन प्राणी मात्र को अपने प्रारब्धानुरूप उदर पूर्ति के लिए अन्न प्राप्त होता ही है। इस लिए उसको यह ज्ञान ही नहीं हो पाता कि भूख लगना भी एक दुःख ही है। मनुष्य को प्यास लगती है, किन्तु पिपासा निवृत्ति का साधन सुमधुर जल हर जगह

सुलभ है। अतः मनुष्य यह सोच भी नहीं पाता कि पिपासा भी एक दुःख ही है। किन्तु विवेक ख्याति प्रधान विशुद्ध मन वाले एक योगी के लिए यह सब दुःख ही दुःख है। ऊपर्युक्त पंक्तियों में संसार में होने वाले दुःखों का दिग्दर्शन कराकर यह समझाया गया है कि संसार का हर क्रिया कलाप हर घड़ी-क्षण दुःख रूप ही है। किन्तु अभी उस दुःख का संकेत इस लेख में नहीं किया गया है जिसकी निवृत्ति के लिए मनुष्य दृढ़ प्रतिज्ञ होकर जन्म लिया करता है। उस दुःख का नाम जन्म और मरण है। मनुष्य अपने जीवन काल में किसी भी प्रकार के दुःखों का अनुभव करता रहता है किन्तु सूर्य की रोशनी उसको दीखती है वायु का सुखद स्पर्श उसको अनवरत हुआ करता है अतः जीवन काल के कठिन दुःखोंका अनुभव करके भी वह अपने आप को दुःखी नहीं समझता। क्योंकि उसको सुख के श्वास आरहे हैं। जिस समय मनुष्य के सिर पर मौत की घड़िया आती हैं और उसके प्राण देह को छोड़कर अलहदा हो जाते हैं, तब वह महान्धकार में घूमता हुआ यह सोचा करता है कि वह सूर्य कहां गया चंद्रमा कहां है। वायु का वह सुख स्पर्श कहां है। मेरे वह मकान कहां हैं जिनमें रहा करता था। मेरे वे भाई – बंधु कहां हैं जिनके हास-विलास में सब समय निकल जाया करता था। पता नहीं कि मैं किस दुःख पंक में पड़ गया हूं जिसमें से न मुझे कुछ दीखता है न किसी का शब्द सुनाई पड़ता है। और न किसी का स्पर्श होता है। न मेरी-क्षुधा पिपासा की निवृत्ति होती है अब मैं क्या करूं! किसकी शरण लूं, जिससे मैं दुबारा उसी प्रकार से सब दृश्यों को देख व सुन सकूं और पूर्ववत् अन्न खा सकूं जल पी सकूं। किन्तु यह उसका सोचना मात्र रह जाता है। यही दशा इस प्रकार की हुआ करती है जिसके भय से भीत होकर मरणासन्न व्यक्ति के मुख में हमारे हिन्दू धर्म की रीति नियमानुसार मिट्टी के दिये से जल या गंगाजल डालते हैं जिससे मर-णासन्न व्यक्ति प्यासा न चला जाय, और प्राप्त हो जाने के बाद गत आत्मा पिपासा के दुःख से दुःखित घूमता न फिरे। ऐसा हो जाने के बाद भी पीपल के वृक्ष में जल का हंडिया बांधने की रिवाज अपनी परम्परा है। जिससे गत आत्मा उस हंड़िया के छिद्र से टपकती हुई जल बूंदों के द्वारा अपनी पिपासा रूप वासना की पूर्ति कर सके। देहावसान के बाद जिस समय देह का अग्नि संस्कार करके मनुष्य लौटा करते हैं। उसी

दिन संध्या के समय ब्राह्मण लोग वियुक्त आत्मा के लिए दीप दान कराया करते हैं और वे लोग कहा करते हैं —

गतात्मानो महान्धकार निवर्त्यर्थं दीप दानं च क्रियते।

अर्थात् हम अपने उस गत आत्मा के अंधकार निवृत्यर्थ यह दीप दान कर रहे हैं। यह सब संकेत देहावसान के बाद एवं देहान्त संबन्ध काल के बीच मे प्राणी की जो दशा हुआ करती है उससे ही सम्बन्धित होते हैं। इसी को मरण का दुःख माना है इसके बाद जन्म लेने का दुःख इससे भी कहीं और अधिक भयंकर है जिसका वर्णन गर्भोपनिषद् में इस प्रकार किया गया है–

ऋतु काले सम्प्रयोगादेकरात्रोषितं कललं भवति। सप्त रात्रोषितंबुद्बुदं भवति। अर्धमासाभ्यन्तरे पिण्डो भवति। मासाभ्यन्तरे कठिनोभवति। मासद्वयेन शिरः संपद्यते। मासत्रयेण पादप्रदेशो भवति। अथ चतुर्थे मासे गुल्फजठर कटि प्रदेशा भवन्ति। पंचमे मासे पृष्ठवंशो भवति। षष्टे मासे मुख नासिकाक्षिश्रोत्राणि भवन्ति। सप्तमे मासे जीवेन संयुक्तो भवति। अष्टमे मासे सर्व लक्षण संपन्नो भवति। पितुरेतोऽतिरेकात्पुरुषो मातुरेतोऽतिरेकात्स्त्री उभयोर्बीज तुल्यत्वान्नपुंसको भवति। व्याकुलित मनसोऽन्धा खंजा कुब्जा वामना भवन्ति। अन्योन्य वायु परि पीडित शुक्र द्वैविध्यात्तनु स्यात्ततो युग्मा प्रजायन्ते।

अर्थात् ऋतु कालान्तर पहली रात्रि में विकृत रस सा होता है सात रात्रिबाद बुदबुदा होता है। आधे मास बाद पिण्ड बन जाता है। एक मास बाद वह कुछ कठिन सा हो जाता है दो मास में शिर बन जाता है। तीन मास के बाद पाद प्रदेश। चौथे मास में गुल्फ जानु और कटि प्रदेश। पांचवें मास पृष्ठ वंश, छठे मास में मुख नासिकादि, सातवें मास में चेतना आ जाता है, आठवें मासमें सर्व लक्षण संपन्न बन जाता है। पिता के वीर्य की अधिकता से पुरुष और माता के रज की अधिकता से स्त्री और दोनों के वीर्य की समानता से नपुंसक और व्याकुल मन होने पर खंजा लूंजा कुब्जा वामन गठना हो जाता है और अन्योन्य वायु के परिपीडन से और शुक्र के दो भागों में बटने से जोड़ा पैदा हो जाता है। और ये सब कुछ हो जाने के बाद—

अथ नवमे मासि सर्व लक्षण ज्ञान करण सपूर्णो भवति पूर्व जाति स्मरति शुभाशुभं च कर्म विन्दति। पूर्व योनिसहस्राणि दृष्ट्वा ततो मया। आहारा विविधा भुक्ताः पीता नानाविधाः स्तनाः।

जातश्चैव मृतश्चैव जन्म चैव पुनः पुनः । यन्मया परिजनस्यार्थे कृतं कर्म शुभाशुभं । एकाकी तेन दह्येऽहं गतास्ते फल भोगिनः। अहो दुःखोदधौ मग्नेन पश्यामि प्रति क्रियाम् । यदि योन्या प्रमुच्येहं तत्प्रपद्ये महेश्वरम् । अशुभक्षय करतारं फल मुक्ति-प्रदायकं । यदि योन्या प्रमुच्येहं तत्प्रपद्ये-नारायणम् । अशुभ क्षयकर्तारं फल मुक्ति प्रदायकम् । यदि योन्या प्रमुच्येहं तत्साख्यं योग मभ्यसे । अशुभक्षय कर्तारं फल मुक्ति-प्रदायकम्, यदि योन्या प्रमुच्येहं ध्याये ब्रह्मसनातनम् । अथ योनि संप्राप्तो यन्त्रेण पीड्यमानो महता दुःखेन जातमात्रस्तु वैष्णवेन वायुना संस्पृष्टस्तदा न स्मरति जन्म मरणानि न च कर्म शुभाशुभं विन्दति ।

इसके बाद नवमा महीना प्राप्त होने पर सर्व लक्षण ज्ञान कर्मों से पूर्ण हो जाता है पहली जाति को याद करता है । शुभा-शुभ कर्मों को पाता है । पूर्व की हजारों योनियों को देखकर भयभीत होता है और कहता है कि मैंने नाना प्रकार के आहार खाये अनेक प्रकार के स्तनों से दूध पिया, बार बार जन्मा और मरा । अपने परिजनों के लिए जो मैंने शुभा-शुभ कर्म किए उनके कारण मैं अकेला जल रहा हूं । वे सब फल भोगी लोग चले गये । ओह ! मैं कैसे दुःख सागर में पड़ गया हूं इससे निकलने का कोई उपाय नहीं दिखाई देता । यदि अबकी बार मैं इस योनि द्वार से निकल जाऊँगा तो मैं महेश्वर भगवान की शरण लूंगा । जिससे वह मेरे पापों का नाश कर मुझे मुक्ति देदें । यदि मैं अबकी बार इस योनि द्वार से निकल गया तो नारायण की शरण लूंगा जिससे मेरे पाप कर्मों का नाश हो और मुक्ति मिल जाय । यदि मैं अबकी बार योनि से बाहर निकल गया तो साख्य योग का अभ्यास करूंगा जिससे मेरे अशुभ कर्मों का नाश होकर मुक्ति मिल जाय । यदि मैं अबकी बार योनि द्वार से निकल गया तो सनातन ब्रह्म का ध्यान करूंगा जिससे मेरे पाप कर्मों का नाश होकर मुक्ति मिल जाय । इस प्रकार विचार करता हुआ वह योनि द्वार को प्राप्त हुआ कोल्हू में पिसते हुए के समान बड़े दुःख से जन्म ले पाता है । और उसके बाद भगवान विष्णु की त्रिगुणात्मका माया की वायु से स्पर्शित हुआ सब कुछ भूल जाता है । जन्म लेना और मरना उसको याद नहीं रहता । अपने शुभा-शुभ कर्मों के फल को भोगता है । य गर्भोपनिषद् के कथनानुसार जन्म लेने का बड़ी दुःख माता के पेट में मल मूत्र दुर्गन्ध को हर समय सूंघता है । माता किसी प्रकार से खट्टा या तीता पदार्थ खाये तो गर्भस्थ प्राणी जलने लगता है । यद्यपि मनुष्य का सारा जीवन दुःख मय ही है । किन्तु फिर भी जन्म मरण को हमारे शास्त्रों में महा भयंकर बतलाया है । इसी से बचने के लिए सभी प्राणी

प्रयत्नशील रहते हैं। किन्तु कोई कोई भाग्यवान जीव इस महा दुःख पंक से बच पाता है। मनुष्य का कर्त्तव्य है कि—

यावत्स्वस्थमिदंदेहं यावन्मृत्युश्चदूरतः
तावदात्महितं कुर्यात् मरणान्ते किंकरिष्यति ।।

अर्थात् जब तक यह शरीर स्वस्थ है मौत की घड़ी दूर है तब तक मनुष्य को अपना भला कर लेना चाहिए। मौत सामने आ जाने पर कुछ नहीं हो सकेगा।

उद्बोधन

केती तेरी जान, किता तेरा जीवना ?
जैसा स्वपन विलास, तृषाजल पीवना ।
ऐसे सुख के काज, अकाज कमावना,
बार बार जम द्वार मार बहु खावना ।१।
नहिं है तेरा कोय, नहीं तू कोय का,
स्वारथ का संसार, बना दिन दोय का ।
'मेरी मेरी' मान फिरत अभिमान में,
इतराते नर मूढ़ एहि अज्ञान में ।२।
मंदिर माल विलास खजाना मेड़ियाँ,
राज भोग सुख साज औ चंचल चेड़ियाँ ।
रहता पास खव्वास हमेश हुजूर में,
ऐसे लाख असंख्य गये मिल धूर में ।३।

—संत वाजिन्द जी

योग-शक्ति और करुणा

(श्री बी.एस. शर्मा 'पौलस्त्य' शास्त्री)

हा, हा, हा, अट्टहास, क्रूर गर्जन,
गुञ्जित हो उठा, दूर निर्जन ।
भयभीत सघन तम, भीमाकाश,
कम्पित धरती का अङ्ग-अङ्ग लख निकट नाश ।
वृक्षों के पत्ते तड़ तड़ तड़ हिल उठे काँप कर,
रह गये, भीत नयन जल, थल, नभ चर ।
चिल्लाया दूर कहीं पक्षी कहता जैसे दौड़ो भागो,
मृत्यु का फैला यहाँ जाल रे सुप्त जीव भागो जागो ।
वह देखो ! कौन ? कर में करवाल, लाल लाल, विकराल,
नेत्र, कर रुद्र वेश, मण्डित छाती पर मुण्ड-माल ।
लेकर शोणित का एक कपाल गर्जा तमका धर देहकाल,
विकराल दस्यु, नर हत्याकारी आङ्गुली माल ।
"प्रण होगा पूर्ण आज मेरा, एक सौ सात शिरों का छेदन,
कर पहिनी यह उंगलीं माल अन्तिम है आज लक्ष्य भेदन ।"
गर्जा वह, कांपे सब अनुचर, हो गया ठिठक कर खड़ा ।
भिक्षु दल—"नाना प्रभुवर, मत जायें सम्मुख काल खड़ा ।।
इस मार्ग नहीं उस मार्ग चलें ।" बोले बुद्ध होकर प्रबुद्ध,
"इस मार्ग नहीं उस मार्ग चलें ?" आनन्द कहो कर हृदय शुद्ध ।।
सम्मुख बाधा का शिला-खण्ड विकराल विपत्ति मुंह बाये,
डरकर बदलें हम मार्ग नये सिद्धान्त यही क्या अपनाये ।"
खिल गये कमल दल सहस, छिटक वाणी झड़ गये अनेकों शब्दरत्न,
बढ़ गये चरण न रोक सके थक येग उक्त करके प्रयत्न ।
गर्जा, गर्जन पर फीका ही रह गया दस्यु वह सहमा सा ।
"क्यों चला नहीं यह खड्ग उठ मन चला जा रहा खिंचता सा ।।
अद्भुत प्रकाश, अनुपम शक्ति, सौन्दर्य सहज, शोभा विलास,
तन मन में छाया राग नवल आकर्षण का अन्तिम विकास ।

"तू कौन ?" 'वही जो तू है रे !" पूछा उसने तो वह बोले ,
कर शक्ति पात तब योगी ने अन्तर्मन के ही पट खोले।
हो गया विनत, विषधर जैसे, वाणी से इतना कह पाया ,
"मैं दुष्ट, नीच, पापी, दस्यु तुम देव देव" कह अकुलाया।
"ना, ना, सुत ऐसा मत सोचो, तुम शुद्ध बुद्ध आत्मा प्रबुद्ध ,
जागो देखो निज नेत्र खोल अन्तर को करलो तनिक शुद्ध।
चंचल मन की ही गति रोको वृत्ति का करो निरोध जरा।
हो कर्म कुशलता युक्त सभी सबके हित हो अनुराग भरा।"
हो योग युक्त मानव शरीर तो क्यूं धरती पर पम्प पलें ?
मनवा रहा सदा अधीर भला कैसे धरती की विपद टलें ?
प्रेम दया और क्षमा अहिंसा कर सकता है सदा वही।
मन पर रहे नियंत्रण जिसका योग वृत्ति हो जिसे कही ॥
"इसी योग करुणा के बल पर मैंने तुमको खींच लिया।
देख हुआ निर्मल तन तेरा" अङ्क उसे कह भींच लिया ॥
अश्रु पूरित मुख भोला था , सभी दनुजता सिमट चली ,
करुणा की धारा वह निकली योग शक्ति है सदा भली।
सभी चकित थी भक्त मण्डली जड़वत होकर देख रही ,
एक पापी का तन मन बदला करुणा धारा वहाँ बही ॥

श्री सद्गुरु देव की महिमा

श्री रामसुमेर उपाध्याय, कछवा मिर्जापुर

संसार में कौन ऐसा है जो सद्गुरु देव की महिमा का वर्णन कर सके। इसी विवशता को आधार बनाकर किसी ने कहा है और ठीक ही कहा है कि –

सब परबत स्याही करूँ,
घोरू समुद मभाय।
धरती सब कागद करूँ,
गुरु-गुन लिखा न जाय॥

फिर क्या कोई उपाय है जिससे सद्गुरु-देव की अपार महिमा का या उनके विशाल गुणों का वर्णन किया जा सके? शास्त्र बताते है कि उपाय है और वह यह कि सद्गुरुदेव की कृपाओं को अवलम्ब बनाकर उनका हृदय में स्मरण करके उनका बन्दन करके ही कुछ लिखना चाहिए। उनकी कृपा-कोर से लेखनी और वाणी उनके गुणों के वर्णन में समर्थ हो सकेगी। नहीं तो इस दिशा में किसी लेखक का प्रयास उसी प्रकार का होगा जैसे कोई समुद्र में थाह लेने को जाय पर लहरों के वेग के कारण किनारे पर भी न टिक सके। अतः मैंने अपने परम पूज्य सद्गुरु देव के चरण-कमलों का ध्यान में स्पर्श करते हुए, नतमस्तक होकर उनसे ही याचना कीकि वे मुझे इस लेख में अपने विचार प्रकट करने की क्षमता प्रदान करें। उन्होंने ध्यान में ही मुझे प्रसाद दिया है और मैं उसी प्रसाद-शक्ति के आधार पर कुछ लिखने बैठ गया हूं।

श्री गोस्वामी तुलसीदास जी अपने गुरु की बंदना करते हैं —

बन्दे बोधमयं नित्यं गुरुं शङ्कर रूपिणम्।
यमाश्रितो हि वक्रोऽपि चन्द्रः सर्वत्रवन्द्यते॥

अर्थात् (अहं मैं (गुरुं) अपने गुरु को (बन्दे,) बंदना करता हूं कैसे गुरु महराज (बोधमयं) विज्ञानस्वरूप है फिर कैसे हैं कि (नित्यम्) नित्य हैं जरामरण रहित वेदान्त-निष्ठ हैं और शंकररूपिणम् शंकरोतीति शंकर कल्याणरूप हैं साक्षात् शिवरूप हैं, (हि यमाश्रित) निश्चयजिनके आश्रित होकर (वक्र चंद्रोपि) टेढ़ाचन्द्रमा भी (सर्वत्र बंद्यते) सब स्थान में स्तुति किया जाता है।

वे रामयणमें लिखते हैं —

बन्दौ गुरुपद कंज, कृपासिंधु नररूपहरि।
महा मोहतमपुंज, जासु बचनरविकरनिकर॥

गुरु के चरण। कमलों को नमस्कार करता हूं कैसे गुरु जी है? (कृपासिंधु) दया के

समुद्र है और कैसे है (नर रूप हरि) मनुष्य रूप धारण किए साक्षात् विष्णु भगवान है और कैसे हैं, (महाम हतमपुंज) महामोह रूपी घने अंधकार के ढेर को (जासुवचन) जिन गुरु जी महाराज का वचन (रवि कर निकर) सूर्य की किरणों का समूह है। अर्थात् जिस प्रकार सूर्य की किरणों से अंधकार मिट जाता है उसी प्रकार गुरु के वचन से हृदय में जो अज्ञान का अन्धकार है वह दूर हो जाता है।

बन्दौं गुरु पद कंज —

अर्थात् गोस्वामीतुलसीदास जी (अपने) गुरु की वंदना करते हैं। गुरु शब्द का क्या अर्थ है ? गु माने अन्धकार रु माने प्रकाश अर्थात्—जो अन्धकरा से प्रकाश में लावे वह गुरु है। वह कौन सा अन्धकार है, जिसे दूर करके प्रकाश में लाते हैं वह अंधकार केवल अंधकार ही नहीं है अपितु प्राणियों के आखों को भी बन्द कर रक्खा है जिससे प्रायः सभी प्राणी अपने कल्याण मार्ग को नहीं देखरहे ही और सुख पाने की इच्छा से अनेकानेक शुभ व अशुभ कर्मों को कर रहे हैं जिसके कि क्लेश, .र्म, विपाक और आशयको उत्पन्न करके संसार में चौरासी लाख योनियों में दुःख भोगने को बाध्य हो जाते हैं। सुख की इच्छा करने वाले प्राणी अच्छी तरह से समझलें कि, संसारमें सुख नहीं है — फिर क्या है ? दुःख है, दुःख का कारण है, कारण का निवारण है और निवारण का उपाय है। संसार में सुख प्राप्ति की इच्छा से जो सकाम कर्म प्राणी करते हैं वही दुःख का कारण हो जाता है यथा —

यस्माच्चयेन च यदाच यथा च यत्र,
यावच्च यत्र च शुभाशुभमात्म कर्म
तस्माच्च तेन च तदा च तथाच तच्च,
तावच्च तत्र च कृतान्त वशादुपैति ॥

अर्थात्—जिससे जिस करके जब जैसा जो जितना जहाँ शुभ-अशुभ अपना कर्म किया है तिससे तिस करके तब तैसा सो तितना (तब तक) तहाँ ही काल की प्रेरणा से प्राप्त होता है। वस्तुतः में सुख और दुःख की परिभाषा अनेक प्रकार से कही गई है किन्तु सभी का भाव एक ही है यानी ज्ञान ही सुख है और अज्ञान ही दुःख है। जब तक अज्ञान रूपी अन्धकार से प्राणियों की आखें ढकी है तब तक प्राणी अपने कल्याण मार्ग को नहीं देख सकता और ज्यों ही ज्ञान रूपी शलाका से प्राणियों की आखें खुल जाती है त्यों ही है वह अपने (सुख) यानी कल्याण मार्ग को देखने लगता है और उस कल्याण मार्ग का पथिक बन कर वह कल्याण को प्राप्त हो जाता है। यह ज्ञान कहाँ से प्राप्त होगा इसको प्राप्त करने के लिए परम आवश्यक है कि पहले सद्गुरु प्राप्त हो जाय-तब क्या होगा।

अज्ञान तिमिरांधस्य, ज्ञानाञ्जनश लाकया।
चिक्षुरुं मिलितं ये न, तस्मैःश्री गुरुवे नम।

अर्थात्—अज्ञान रूपी अंधकार से (ढपे-हुए नेत्रको) ज्ञान रूपी शलका से उस ढपे हुए नेत्र कोजो गुरु देव जी खोल देते है उस गुरु

को नमस्कार है और सद्गुरु देव जी कैसे हैं-

कृपासिंधु नर रूप हरि –

गोस्वामी तुलसीदास जी सद्गुरु गुणानुवाद में कहते हैं कि सद्गुरु कृपा के समुद्र और मनुष्य रूप में हरि ही हैं। अन्यत्र भी कहा गया है कि—

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णु गुरुः साक्षात्महेश्वरः
गुरुरेकं परं ब्रह्म तस्मै श्री गुरुवे नमः

अर्थात् गुरु ही ब्रह्मा, गुरु ही विष्णु और गुरु ही साक्षात् महेश्वर हैं उस गुरु को नमस्कार करते हैं। ऐसी है सिद्धगुरु की महिमा इस बारे में जितना लिखा जाय कम है। कहा है-

ब्रह्मानन्दं परम सुखदं
केवलं ज्ञान मूर्तिम्
द्वंद्वातीतं गगन सदृशं
तत्वमस्यादि लक्ष्यम्।
एकं नित्यं विमलमचलं
सर्वधी साक्षि भूतम्।
भावातीतं त्रिगुणरहितं
सद् गुरुं तं नमामि ॥

अर्थात्- उस सद् गुरु को नमस्कार है जो केवल ज्ञान की मूर्ति परम सुखद एवं ब्रह्मानंद स्वरूप है और जो आकाश के सदृश सर्वत्र व्याप्त द्वन्दों से परे तत्वमसि (तू वही है) जिसका यह लक्ष्य है अर्थात् विचार है। वह एक नित्य निर्मल और अचल अर्थात् दृढ़ सब भूतों के अर्थात् प्राणियों के बुद्धि का साक्षीभूत है, तथा सब भावों से अतीत और त्रिगुण (सत् रज. तम) से रहित है। अर्थात् परे हैं। ऐसे सद् गुरु देव को नमस्कार है। इसी प्रकार महर्षि पतञ्जलि ने योग-दर्शन में लिखा है कि —

पूर्वेषामपि गुरु कालेनानवच्छेदात्

अर्थात् (वह गुरु सत्ता सबके) पूर्वजों का भी गुरु है, क्योंकि उसका काल से अवच्छेद नहीं है। क्योंकि वह अनादि (आदि अन्त से रहित) काल के दायरे से बाहर यानी कालातीत काल का महा काल है। श्वेताश्वतरोपनिषद् में वर्णन है कि —

जिससे यह सम्पूर्ण जगत: सदा व्याप्त है जो ज्ञान स्वरूप परमेश्वर निश्चय ही काल का भी महा काल सर्वगुण सम्पन्न (और) सब को जानने वाला है उससे ही शासित हुआ यह जगत रूप कर्म विभिन्न प्रकार से यथायोग्य चल रहा है और ये पृथ्वी, जल, तेज, वायु तथा आकाश भी उसी के द्वारा शासित होते हैं इस प्रकार, चिन्तन करना चाहिए यही उपरोक्त वचन —

पूर्वेषामपि गुरु कालेनान वच्छेदात्।

का अर्थ है गुरु सत्ता है। सद्गुरु में और ईश्वरमें कोई भेद नहीं है। यही अतः सद्गुरु सदैव वन्दनीय है।

सत्यं - शिवं - सुन्दरम्

(श्री वनवासी)

किसी एक राजा ने एक ऐसा महल बनवाया जिसमें चारों ओर शीशे ही शीशे लगे थे। जब वह उस महल में आकर बैठ जाता था तो उसे सब ओर अपने ही रूपों का दर्शन हुआ करता था अर्थात् हर ओर उसे अपना ही प्रतिबिम्ब नजर आता था।

× × × ×

संयोग से एक दिन उसके इस शीश महल में कहीं से एक कुत्ता पहुँच गया। बीच में खड़े होकर कुत्ते ने देखा कि चारों ओर उसके ही भाई-बन्धु खड़े हैं। उस बेचारे को क्या मालूम कि यह जो चारों ओर कुत्ते ही कुत्ते दिखाई पड़ रहे है- वे मेरे ही अपने प्रतिरूप हैं।

× × × ×

अपने इन प्रतिरूपों को—वह अपर श्वान —यानी दूसरे कुत्ते समझ कर ईर्षा, और भय के वशीभूत होकर उन पर भोंकने लगा। उसने देखा कि चारा ओर से दूसरे कुत्ते भी उस पर उसी तरह भोंक रहे हैं। कुत्ते को इस पर और भी अधिक क्रोध आया और क्रोध में वह फिर उछल-उछल कर उन पर हमला करने लगा। लेकिन उछल-उछल कर चारो ओर हमला करने पर उसके दांतों और पंजों की पकड़ में सिवाय शीशे की दीवालों के और कुछ आ ही नहीं पाता था।

× × × ×

अज्ञानी कुत्ता अन्त में इसी तरह शीशे की दीवारों से टकरा टकरा कर मर गया। लेकिन उसे अन्त तक यह ज्ञान हो नहीं हो पाया कि शीशमहल में हर ओर उसे कुत्तों की जो बटेलियन दिखलाई पड़ रही थी वह सब उसका अपना ही प्रतिरूप था।

× × × ×

यह दुनिया भी एक शीश-महल हैं इसमें भिन्न-भिन्न दीखने वाले पंचतत्व निर्मित कलेवरों में वही एक आत्म-तत्व है जो कि तुम में है। इस सत्य को तुम्हें पहचानना चाहिए कि हम-तुम सब एक ही महत् तत्व के अंश हैं।

× × × ×

दूसरे केलेवर रूपी-शीशे में जो आत्म तत्व है वह तुमसे भिन्न नहीं है। 'आत्मवत् सर्व भूतेषु' यदि यह ज्ञान तुम आचरण में नहीं उतार पाओगे तो अज्ञानी कुत्ते के समान ईर्षा और भय का वातावरण तुम्हारा अपना ही अन्त कर डालेगा। भगवान श्रीकृष्ण ने इसी लिए श्रीमद् भगवद् गीता में में कहा है कि जो अपने समान सबको देखता है वही सचमुच देखता हैं।

योग में गुरुकी अपेक्षा

(श्री डा० ऋषिराम शर्मा गणित-विभाग)
—काशी हिन्दू विश्वविद्यालय—

शब्दों में श्री सद्गुरु भगवान के स्वरूप की महिमा की अभिव्यक्ति संभव नहीं है क्योंकि वह तो परमात्मा के भी अगम्य तथा अनन्त स्वरूप हैं। जिस प्रकार गूंगा व्यक्ति मीठे फल का रसास्वादन कर आनन्द में मग्न तो हो जाता है किन्तु उसका वर्णन नहीं कर सकता उसी प्रकार गुरु-कृपा प्राप्त भाग्यवान पुरुष योगामृत का रसास्वादन कर अन्दर ही अन्दर सद्गुरु-चरणों के प्रेम में विभोर तो रहता है किन्तु उसकी अभिव्यक्ति करने में अपने को सर्वथा असमर्थ पाता है। जब-जब वह यह सोचता है कि मुझपर मेरे गुरु जी कितने कृपालु हो गये हैं तब-तब वह उनकी महिमा का वर्णन करना तो चाहता है किन्तु अवाक् रह जाता है। बस एक नमस्कार शब्द ही उसके पास रहता है और वही उसके मुख से स्वतः निकल पड़ता है। वह मन की वीणा, उठाकर गाने लगता है —

अखण्डमण्डलाकारं व्याप्तं येन चराचरं
तत्पद दर्शितं येन तस्मै श्री गुरुवे नमः।
गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुः गुरु साक्षात्महेश्वरः
गुरुरेक परम ब्रह्म तस्मै श्री गुरुवे नमः।
अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानांजन शलाकया
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्री गुरुवे नमः।

अर्थात् जिन गुरुदेव ने मुझे सर्वव्यापी अखण्डमण्डलाकार स्वरूप का साक्षात्कार करा दिया उनको मेरा नमस्कार है। जो गुरुदेव ब्रह्मा, विष्णु और शिव के विशुद्ध स्वरूप हैं उनको मेरा नमस्कार है। जिन गुरुदेव ने मायावी अन्धकार अज्ञान से अन्धी हुई मेरी आँखों में ज्ञान रूपी अंजन लगाकर ज्योति लादी अर्थात् आन्तरिक योग-दृष्टि का प्रकाश देदिया उन गुरुदेव को मेरा नमस्कार है।

'गुरु' शब्द का अर्थ है कि जो माया-जनित अज्ञानान्धकार का नाश कर योग जनित ज्ञान का प्रकाश करा दे। अर्थात् जिनकी कृपा से अन्तर अनुभूतियों का प्रकाश होने लगे। बिना गुरु की कृपा के किसी को योग सिद्धि नहीं होती। भगवान सदाशिव जी ने भी वामदेव को उपदेश करते हुये अमनस्क खण्ड में कहा है कि —

वेदान्ततर्कोक्ति भिरागमैश्च
नानाविधैः शास्त्र कदम्ब कैश्च
ध्यानाद्यिभिः सत्करणैर्नगम्यं
श्चिंतामणि ह्यैकगुरु-विहाय ॥

अर्थात् तत्ववेत्ता गुरु के बिना केवल

वेदान्त तर्क मीमांसा तथा श्रुतियों के अध्ययन से किसी को योग रूपी चिन्तामणि की प्राप्ति नहीं हो सकती। अपने मन से कोई चाहे कितना भी पुराणादि शास्त्रों का अध्ययन करता रहे अथवा प्राणायामादिक हठयोग के साधनों का अथवा ध्यान का अभ्यास करता रहे किन्तु जब तक गुरु की कृपा नहीं होती तब तक योगसिद्धि नहीं मिलती। श्रुतियों में भी इसको और अधिक पुष्ट कर दिया गया है कि —

"आचार्यवान् पुरुषो वेद"

(छांदोग्य उपनिषद्)

अर्थात् जिसको सद्गुरु की प्राप्ति हो गयी है वही पुरुष योग के रहस्यों को जान सकता है अन्यथा नहीं।

व्यावहारिक दृष्टि से भी तैराकी में निपुण व्यक्ति ही तैरना सिखा सकता है तथा डूबते हुये को बचा सकता है। यदि कोई पुरुष पुस्तकों में तैरने की क्रियाविधि का ज्ञान प्राप्तकर तीव्रगामी नदी में तैरने का दुःसाहस कर कूद पड़े तो उसके दुष्परिणाम ही निकलते हैं। योग की रहस्यमयी विद्या तो केवल अनुभव गम्य है, वह तो अनुभवी सिद्धयोगी की कृपा से ही मिल सकती है। इसीलिये स्कन्दपुराण में कहा है कि

आचार्याद्योग सर्वस्वमवाप्य
स्थिरधीः स्वयं।
यथोक्तं लभेत तेन
प्राप्नोत्यपि च निर्वृतिम् ॥

(स्कन्दपुराण)

अर्थात् गुरु से योग के रहस्य को जानकर ही दृढ़मति पुरुष गुरु द्वारा निर्देशित योगाभ्यास में लग जाय तभी उसको स्वयं ही योगसिद्धि प्राप्त होती है जिसको प.कर रम शान्ति मिलती है।

कभी-कभी योग की विभूतियों से आकृष्ट होकर पुरुष गुरु के बिना ही पुस्तकों में पढ़कर अपने मन से ही प्राणायाम आदि क्रियायें करने लग जाते हैं और फलस्वरूप कुष्ठादि व कासश्वासादि रोगों से ग्रस्त हो जाते हैं। इसलिए हठयोग प्रदीपिका में स्पष्ट चेतावनी दे दी गयी है कि

हठान्निरुद्धः प्राणोऽयं
रोमकूपेषु निः सरेत्।
देहं विदारयत्येव
कुष्ठादि जनयत्यपि॥
ततः प्रत्याथित व्योसौ
क्रमेणारण्य हस्तिवत्॥

(हठयोग प्रदीपिका)

अर्थात् बिना गुरुनिर्देशित क्रम के विपरीत हठ पूर्वक यदि कोई प्राण का निरोध करता है तो प्राण उसके रोमछिद्रों से बाहर निकल जाता है और शरीर को विकृत करदेता है तथा कुष्ठादिक भयंकर रोगों की उत्पत्ति हो जाती

है। अतएव जिस विधि का गुरुदेव निर्देश करें उसी विधि से शनैः शनैः यह प्राण जंगली हाथी की तरह वश में हो जाता है। शास्त्रों में प्राणजय की सिद्धि का यही उपाय बताया गया है कि-

यथा सिंहो गजो व्याघ्रो
भवेद्वश्यः शनैः शनैः ।
तथैव सेवितो वायुरन्यथा
हन्ति साधकम् ।।
युक्तं युक्तं त्यजेद्वायं
युक्तं युक्तं च पूरयेत ।
युक्तं युक्तं च बध्नीया
देवं सिद्धिमाप्नुयात् ।।

अर्थात् जैसे शेर, हाथी और व्याघ्रादि शक्तिशाली जंगली जानवर बिना उपाय के वश में नहीं आते और तनिक भी असावधानी होने पर घातक सिद्ध होते हैं किन्तु युक्ति पूर्वक शनैः शनैः वश में होते हैं वैसे ही प्राण को वश में करना चाहिये अन्यथा कुपित हुआ प्राण साधक को विनष्ट कर देता है। अतएव पूर्ण गुरु से युक्ति जानकर उसी के अनुसार युक्ति पूर्वक ही प्राण का पूरक, रेचक और कुम्भक करना चाहिये। इस प्रकार ही प्राण जय की सिद्धी प्राप्त होती है।

भगवान शिवजी ने भी वामदेव को उपदेश देते हुये यही सिद्धान्त पुष्ट किया है कि गुरु कृपा के बिना प्राण जय नहीं होता। अतएव हठयोग के साधक को चाहिए कि

मरुज्जयो यस्य सिद्धस्तं
सेवेत गुरु सदा ।
गुरुवक्त्रप्रसादेन कुर्यात्
प्राणजयं बुधः ।।
(योग बीज)

अर्थात् साधक को ऐसे गुरू की सदैव निरन्तर सेवा करते रहना चाहिए जिसको प्राणजय सिद्ध होगया है क्यों कि गुरुमुख से प्राप्त निर्देश के अनुसार चलने पर ही प्राण जय होता है। भगवान कपिल देव ने अपने सांख्य सूत्र में कहा है कि —

"प्रणतिब्रह्मचर्योपसर्पणानि ।
कृत्वा सिद्धिर्बहुकालात्तद्वत् ।।"

अर्थात् जैसे इन्द्र को ब्रह्मचर्यादिक वृत्तों का पालन करते हुये नम्र भाव से अपने गुरू ब्रह्मा जी की शरण में जाने पर ही चिरकाल में सिद्धि प्राप्ति हुई वैसे ही साधकों को भी ब्रह्मचर्यादिक यम नियमों का पालन करते हुये विनीत भाव से गुरु की शरण में जाकर चिरकाल तक उनकी सेवारत रहना चाहिए तभी सिद्धि की प्राप्ति होगी अन्यथा नहीं।

बिना गुरुदेव के शास्त्रों का अध्ययन करते रहने से शास्त्रों के रहस्यों का ज्ञान नहीं हो पाता अपितु अनेक शङ्काओं में बुद्धि उलझकर ही रह जाती है। यदि कोई पुरुष निरन्तर लगन से परिश्रम कर किसी विद्या

को जान भी ले किन्तु वह भी फलसिद्धि कराने में असमर्थ है ऐसा स्वयं भगवान सदाशिव जी ने प्रतिपादित किया है कि —

भवेद्वीर्यवती विद्या गुरुवक्त्र समुद्भवा ।
अन्यथा फलहीना स्यान्निर्वीर्याप्यति दुखदा ॥

(शिव संहिता)

अर्थात् गुरुमुख से प्राप्त विद्या ही वीर्यवती होती है अर्थात् फलदायिनी होती है । बिना गुरु मुख के स्वयं प्राप्त की गयी विद्या फलदेने में समर्थ नहीं होती अपितु वह निर्वीर्या और दुखदायी ही सिद्ध होती है ।

श्रुतियों में भी इसकी पुष्टि की गई है कि —

आचार्याद्वै व विद्या विदिता "साधिष्ठं प्रापयति"

(छांदोग्य उपनिषद्)

अर्थात् गुरु मुख से प्राप्त हुई विद्या ही यथेष्ट फल देती है ।

× × ×

अब प्रश्न उठता है कि वह यथेष्ट फल क्या है जिसकी प्राप्ति गुरु कृपा के बिना संभव नहीं है । यह यथेष्ट फल योग की सिद्धि है जिसकी महिमा हमने अपने पिछले लेख के कुछ अंश में वर्णित की है । योग की सिद्धि का सबंन्ध मन के निरोध से है और यह मन प्राण के साथ मिलकर उसी प्रकार एक हो गया है जिस प्रकार पानी में मिलकर दूध । इसी लिए अमनस्क खण्ड में भगवान महादेव जीने प्रतिपादन किया है कि —

प्राणो यत्र विलीयते मनस्तत्र विलीयते ।
मनो विलीयते यत्र प्राणस्तत्र विलीयते ॥

अर्थात् जहाँ प्राणलय होजाता है वहीं मन लय हो जाता है । अतएव प्राणजय होने पर मनजय हो जाता है और मन का निरोध हो जाने पर प्राणजय हो जाता है । प्राणजय में गुरु की अपेक्षा का सूक्ष्म वर्णन हम ऊपर कर आये हैं । अब मनोजय में गुरु की अपेक्षा का वर्णन करेंगे । भगवान् महादेव जी ने अपने मुखारविन्द से इसका इस प्रकार से निरूपण किया है कि —

तत्राप्यसाध्य पवनस्य नाशः
षडङ्ग योगस्य निषेवणेन ॥
मनोविनाशस्तु गुरुप्रसादः —
निमेषमात्रेण सुसाध्य एव ॥

अर्थात् प्राणपर विजय प्राप्त करना तो बहुत कठिन होता है किन्तु गुरु मुख से प्राप्त निर्देश के अनुसार षट चक्रों का ध्यानयोग से भेदन करते हुए गुरुकृपा से मनोजय तो अल्पकाल में ही सुसाध्य है ।

अब यहाँ एक बात विचारणीय है कि जब दुर्लभ योगविद्यागुरु कृपा से अल्पकाल में ही प्राप्त हो सकती है तो वह गुरु कृपा कैसे प्राप्त हो । इस विषय में श्रुतियों ने उपदेश किया है कि —

यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ
तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः ॥

अर्थात् जिस शुद्ध अन्तकरण वाले श्रद्धालु साधक की जगदात्मा में परा अव्यभिचारिणी अनन्यभक्ति है और वैसी ही शुद्ध परमतत्व-स्वरूप अपने गुरु में है उसीको श्रुतियों के रहस्यों का प्रकाश होता है । अतएव गुरु चरणों में जिस साधक की पूर्ण शरणागति होती है वही गुरुकृपा का पात्र होता है । पुण्य शाली गुरु-भक्त को ही गुरु कृपा प्राप्त होती है । मनुस्मृति में गुरु कृपा प्राप्त करने हेतु निर्देश दिया है कि —

यथा खनन्खनित्रेण नरो वार्यधिगच्छति ।
तथा गुरुगतां विद्यां शुश्रूषुरधिगच्छति ॥
(मनुस्मृति)

अर्थात् जैसे खोदते-खोदते अधिक गहराई में जाने पर ही मनुष्य को शुद्ध जल की प्राप्ति होती है वैसे ही निरन्तर गुरु-सेवा में रत रहने वाले शिष्य को ही गुरु कृपा से योगविद्या की प्राप्ति होती है । जगदात्मा भगवान श्री कृष्णजीने भी गीता में संकेत किया कि-

जन्मनां सहस्त्राणामन्ते ज्ञानवान मांप्रपद्यते ।

× × ×

अर्थात् सहस्त्रों जन्मों की साधना के बाद जीव योगसिद्धि से मुझे प्राप्त करता है । पुनः वह योग-सिद्धि कैसे मिलती है इसका जगदात्मा भगवान श्रीकृष्ण जी यही उपाय बताते हैं कि—

"तद् विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया ।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनः तत्वदर्शिनः ॥

अर्थात् उस योगविद्या को विनीत भाव से गुरु चरणों में अपने को अर्पण करके उनकी सेवा करके तथा जिज्ञासाभाव से उनसे पूछ करके जानो तभी वह तत्ववेत्ता गुरु योगविद्या का उपदेश करेंगे । यहाँ यह शंका नहीं करनी चाहिये कि ज्ञान योग से भिन्न है । वस्तुतः ज्ञान योगसिद्धि का फल है । इसी लिए जगदात्मा भगवान श्रीकृष्ण जी ने स्वयं अपने मुखारविन्द से स्पष्ट कर दिया है कि —

एकं सांख्यं च योगं च यः पश्यति स पश्यति ।

× × ×

अर्थात् ज्ञान और योग एक ही है जो यह समझता है वही यथार्थ समझता है ।

यदि कोई यह शंका करें कि शास्त्रो में तो यह भी कहा गया है कि अपनी आत्मा ही अपना गुरु है, क्यों कि भागवत के एकादश स्कन्ध में लिखा है कि —

समुद्धरन्ति ह्यात्मानमात्मनैवाशुभाशयात् ।
आत्मनो गुरुरात्मैव पुरुषस्य विशेषतः ॥

अर्थात यह पुरुष विशेष करके आप ही अपना गुरु होता है क्योंकि स्वयं ही विचार करके अशुभ संसार से अपना उद्धार करता है ।

महर्षि वसिष्ठ जी ने भी योगवासिष्ठ में भगवान राम को उपदेश करते हुये कहा है कि —

उपदेशक्रमो राम व्यवस्थामात्रपालनम् ।
ज्ञप्तेस्तु कारणं शुद्धा शिष्यप्रज्ञं व राघव ॥

अर्थात् हे राम गुरु का शिष्य को उपदेश करना तो मर्यादापालन मात्र है। वस्तुतः ज्ञान की प्राप्ति का कारण तो शिष्य की विशुद्ध प्रज्ञा ही है।

पुराणों में भी बिना गुरु के ही गर्भ में ही वामदेव को ज्ञानप्राप्ति का उल्लेख मिलता है। इसी प्रकार जड़भरत को भी बिना गुरु के ज्ञान की प्राप्ति हुयी है। इस प्रकार की शंकाओं का समाधान अखिल लोक पावन भगवान श्रीकृष्ण ने गीता में किया है कि —

पूर्वाभ्यासेन तेनैव ह्रियते ह्यवशोऽपिसः।
तत्र तं बुद्धिसंयोग लभते पौर्वदेहिकम् ॥

अर्थात् पूर्व जन्मकृत योगाभ्यास के फलस्वरूप माया का विक्षेप स्वयं हट जाता है और साधक को पूर्वजन्म में गुरुकृपा से प्राप्त बुद्धि योग की इस जन्म में प्राप्ति हो जाती है। आत्मपुराण में भी यह बात स्पष्ट कर दी गयी है कि वामदेव जी को पूर्वजन्म में सनकादिकों के गुरु उपदेश के फलस्वरूप ही गर्भ में ज्ञान की प्राप्ती हुई। भगवान पतञ्जलि देव ने भी

"भवप्रत्ययः विदेह प्रकृतिलयानाम्"

अर्थात् पूर्वजन्म में प्राप्त विदेहता तथा प्रकृतिजयत्व के कारण पुरुषों को जन्म लेने मात्र से योगसिद्धि की प्राप्ति का निरूपणकर यह बात स्पष्ट कर दी है। भागवत में अपनी आत्मा ही अपना गुरु है अथवा वसिष्ठ जीने जो शिष्य की विशुद्ध प्रज्ञा को ज्ञानसिद्धि का हेतु बताया है उसका भी यही अभिप्राय है कि साधक को केवल गुरु के आश्रय ही नहीं रहना चाहिये अपितु गुरु द्वारा उपदेशित साधनाओं का अभ्यास करके अपने अन्तः करण की शुद्धी करनी चाहिये, क्योंकि शुद्ध अन्तःकरण में ही योग विद्या का प्रकाश होता है और अन्त करण की शुद्धि उपासनाओं से होती है और उपासनाओं का बिना गुरु मुख से जाने यथार्थ ज्ञान नहीं होता है। अतः गुरु को अपेक्षा का विरोध नहीं है।

जैसे किसी वर्तन में चाहे जितना जल भरें यदि उसमें छिद्र है तो कदापि जल नहीं ठहरेगा। इसी प्रकार गुरुकृपा से प्राप्त योग विद्या उसी शिष्य के पास ठहरती है जिसके अन्तः करण में अहंकार, काम, क्रोधादिक विकाररूप छिद्र नहीं है। अतः साधक को निरन्तर ब्रह्मचर्यादिक यम नियम का पालन करते हुये निरन्तर गुरु द्वारा उपदेशित योगाभ्यास में रत रहना परमावश्यक है अन्यथा गुरु प्रदत्त योग विद्या अशुद्ध अन्तःकरण से निकलकर पुनः गुरु के पास वापिस चली जायगी। इसी लिए जगदात्मा भगवान श्री कृष्ण जी ने गीता में उपदेश दिया है कि—

युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु।
युक्तस्वाप्नावबोधस्य योगी भवति दुःखहाः ॥

अर्थात् जिसका आहार एवं व्यवहार

नियमित तथा युक्त है और जिसकी कर्म प्रवृति भी युक्त है, जो नियमित एवं संयमित ढंग से सोता और जागता है उसी को दुःख नाशक योगसिद्ध सिद्ध होता है ।

गोरक्षशतक में योग मार्ग के साधकों के लिये योगसिद्धि में बाधक वस्तुओं का त्याग करने का उपदेश दिया है कि —

बर्जयेद्दुर्जनप्रान्तं वह्निस्त्रीपथसेवनम् ।
प्रातः स्नानोपवासादि कायक्लेशविधिं तथा ॥

अर्थात् योग के साधकों को दुर्जनों की संगति, अग्नितापन स्त्रीगमन, अधिक भ्रमण और शरीर को क्लेश देने वाली प्रातः स्नान और उपवास आदि क्रियाओं का त्याग कर देना चाहिए ।

अमविन्दु उपनिषद् में भी योग जिज्ञासु साधक के लिए कुछ वर्जित कर्मों का उल्लेख किया है कि —

भयं क्रोधमयालस्यमतिस्वप्नातिजागरम् ।
अत्याहारमनाहार नित्यं योगी विवर्जयेद् ॥

अर्थात् — योगी को भय, क्रोध, आलस्य, अतिनिन्द्रा-अति जागरण, अधिक भोजन और निराहार का सर्वथा नित्य वर्जन करना चाहिए ।

किसी भाग्य शाली जीव को परम कृपालु गुरु की कृपा से कुछ अनुभूतियों का प्रकाश होने भी लग जाय उसको । भी शास्त्र चेतावनी देते हैं कि —

अत्याहारः प्रयासश्च प्रजल्पो नियमग्रहः ।
जनसंसर्गश्च लौल्यं च षड्भिर्योगो विनश्यति ॥

अर्थात् अधिक भोजन करने से, अधिक परिश्रम से वार्तालाप से व्रत इत्यादि के कठिन नियमों के पालन से, सांसारिक जीवों के सम्पर्क से इन्द्रियों के भोगों में लोलुपता से योगविद्या का प्रकाश विनष्ट हो जाता है ।

इस लिए जिन भाग्यवान साधकों को परम दयालु करुणनिधि कृपामय श्री महाप्रभुजी की कृपा से योग की अनुभतियां होरही हैं । वे अपने श्री गुरुदेव के द्वारा दी गई सम्पदा को व्यर्थ न खोदेवें अपितु उपर्युक्त ब तों को समझ कर उनका अवश्य ही पालन करें अन्यथा सद्गुरु की दुर्लभ कृपा पाकर भी योगसिद्धि न पासके तो पश्चाताप के अतिरिक्त कुछ हाथ न लगेगा। केवल विनाशकारी अहंकार का भूत सिरपर सवार हो जायेगा।

गुरु शिष्य

(स्व. श्री साने गुरु)

भारतीय संस्कृति में गुरु-भक्ति एक अत्यन्त मधुर काव्य है। ज्ञानेश्वर ने ज्ञानेश्वरी के तेरहवें अध्याय में इस गुरु-भक्ति की अपार महिमा गाई है। बहुत-से लोग इस गुरु-भक्ति का महान् अर्थ नहीं समझते। आज चारों ओर दंभ बढ़ चुका है और जहां-तहां दिखावा बढ़ गया है और उच्च गुरु-भक्ति का महत् तत्त्व धूमिल हो गया है।

गुरु का अर्थ केवल शिक्षक नहीं है, केवल आचार्य नहीं है। शिक्षक अथवा आचार्य उस ज्ञान विशेष से हमारा थोड़ा-बहुत परिचय करा देते हैं। हम उनका हाथ पकड़कर ज्ञान के आंगन में आते हैं; लेकिन गुरु हमें ज्ञान के सिंहासन पर ले जाता है। गुरु हमें उन ध्येयों के साथ एक- रूप कर देता है। ज्ञान में तन्मय हो जानेवाला गुरु शिष्य को भी समाधि-अवस्था प्राप्त करा देता है। स्कूल में विद्यार्थी प्रश्न पूछते हैं लेकिन यहां गुरु के साथ बहुत-से प्रश्नोत्तर नहीं होते। यहां बिना बोले ही शंकाओं का समाधान हो जाता है, बिना कहे उत्तर मिल जाता है। यहां तो देखना और सुनना है। बिना बोले ही गुरु सिखा देता है और बिना पूछे शिष्य सीख जाता है। गुरु मानो उमड़ता हुआ ज्ञान-सागर है। सत्शिष्य का मुखचन्द्र देखकर गुरु लहराने लगता है गीता में ज्ञानार्जन के प्रकार बताये गए हैं।

'यह ज्ञानप्रणाम करके, बार-बार पूछकर और सेवा करके प्राप्त करो।' हम परिश्रम करके शिक्षक से ज्ञान प्राप्त करते हैं लेकिन गुरु के पास तो प्रणाम और सेवा ही ज्ञान के दो मार्ग होते हैं। नम्रता ज्ञान का सच्चा आरम्भ है। शिष्य गुरु के पास खाली मन लेकर जाता है। कुएँ में अपार पानी है, लेकिन यदि बरतन नहीं झुके तो उस बरतन में एक बूंद भी नहीं आ सकेगा। इसी प्रकार जो ज्ञान के सागर हैं उनके सामने जबतक हम न झुकेंगे, उनके चरणों के पास चुपचाप नहीं बैठेंगे तबतक हमें ज्ञान प्राप्त नहीं हो सकेगा। भरने के लिए झुकना ही पड़ता है। प्रगति करने के लिए झुकना ही पड़ता है।

× × × ×

गुरु के सामने झुकिये। विनम्र बन कर ज्ञान की आकांक्षा लेकर जाइए। निश्चय ही गुरु आप को ज्ञान की चोटी पर बिठा देंगे।

सिद्धपुरुष श्री सदाशिव ब्रह्म

(स्वामी दत्त योगेश्वर देव तीर्थ)

सोलहवीं शताब्दी में दक्षिण भारत की पुण्यसलिला कावेरी नदी के तटवर्ती गांवों में एक ऐसे काले रंग के और छोटे कद के देहवाले, विशाल आंखें और अजानबाहुवाले, मौनव्रतधारी तथा दिगम्बरवेशी चमत्कारी पुरुष के विषय में चर्चा इतनी हद तक पहुंच चुकी थी कि कई लोग उन्हें चिरंजीवी अश्वत्थामा मानते थे तो कई उन्हें महर्षि वेदव्यास ही समझते थे। इसी लिए लोग उनके दर्शनमात्र से ही अपने को महाभाग्यशाली बनाने के लिए लालायित रहते थे। तंजौर और त्रिचिनापल्ली के जंगलों में निवास करने वाले भील लोगों का तो यहां तक का दावा था कि उन्होंने उन सिद्ध पुरुष का न केवल कई बार दर्शन ही किया है अपितु उन्हें भोजन भी कराया है। उन लोगों का कहना था कि सिद्ध पुरुष अपने हाथों से कभी-भी अन्नग्रहण नहीं करते थे। वे किसी से अन्न की भिक्षा भी नही मांगते थे। अजगर-वृत्ति से रहते थे अर्थात् कोई व्यक्ति जो कुछ कच्चा या पकाया हुआ अन्न उनके मुख में रख दे उससे वे निर्वाह कर लेते थे। वे सिद्ध पुरुष जब जहां लोगो के दृष्टि-पथ में आ जाते थे तब भक्त लोग हर्ष-विभोर हो उठते थे और तुरन्त ही उनके समीप जाकर श्रद्धाभक्ति पूर्वक उन्हें प्रणाम करते थे। उस समय यदि लोगों के पास कुछ अन्न होता तो उस अन्न को वे सिद्ध-पुरुष के मुख में रख देते थे जिसे सिद्ध पुरुष सीधे निगल जाते थे। उदर-पूर्ति हो जाने पर सिद्ध पुरुष वहां से घने जंगलों में चले जाते थे। जंगलों में लकड़ी काटने वाले तथा मधुसंचय करने वाले कई लोगों ने सिद्ध पुरुष को जंगलों की गुहाओं में कई दिनों तक समाधि में डूबे देखा था। उस समय उनके देहकी चारों ओर एक अद्भुत ज्योति चमती रहती थी। यह बात भी प्रसिद्ध थी कि जहां-जहां पर सिद्ध पुरुष निवास करते थे एवं विचरण करते थे वहां-वहां पर गुलाब की दिव्य सुगंध फैल जाती थी। उनके अलौकिक चमत्कारों के विषय में लोगों में कई कथाएं प्रचलित थीं।

वे सिद्ध पुरुष कौन होंगे? कहाँ के होंगे? उन्हें कौन-सी सिद्धियां किस तपस्या के फल-स्वरूप प्राप्त हुई होंगी? इत्यादि के विषय में जानकारी प्राप्त करने की सबकी उत्सुकता होना स्वाभाविक है। तो आइये,हम आज यहां पर उन सिद्धपुरुष के विषय में सत्य जानकारी का अनावरण करें।

महाराष्ट्र के छत्रपति शिवाजी महाराज के वंशज मराठा राजा श्री शाहजी राज महा-

राज ई० सं० १६८४ से ई० सं १७१२ पर्यंनत तंजौर की गद्दी पर आसीन थे । उनका अमात्य श्री त्र्यंबक मखि वीर एवं धर्म भावापन्न व्यक्ति होने से राजा में भी धर्म-भाव अंकुरित हुआ था । इसी धार्मिक वृत्ति के कारण राजा ने अपने राज्य का तिरुवस-नाल्लूर नामक एक गांव वहां के चालीस सत्त्व गुणी वैदिक पण्डितों को ई० सं० १६९६ में दान में दे दिया था । राजा शाहजी राज द्वारा दान में मिलने के उपरान्त पण्डितों ने उस गांव का नाम "शाहाजी राजपुरम्' रख दिया । उन चालीस वैदिक पण्डितों में से एक थे श्री मोक्ष-सुन्दरम् अवधानी, जो आन्ध्र प्रांतीय थे । उनकी स्त्री पार्वतअम्मल सुशीला पतिपरायणा एवं भगवद्भक्ता थीं । श्री मोक्ष सुन्दरम् भगवान् श्री राम और श्रीकृष्ण के उपासक थे जब कि पार्वती अम्मल शिवो-पासक थीं । इतने पर भी दोनों में कभी भी उपासना विषयक विचार संघर्ष नहीं होता था क्योंकि वे यह बात अच्छी तरह से सम-झते थे कि एक ही महासत्ता से समय-समय पर भगवान् के विभिन्न अवतार होते हैं। मूल में एक अद्वय तत्त्व ही है । पति-पत्नी द्वारा अपने-अपने आराध्य देवता की श्रद्धा और भक्तिपूर्वक की गयी उपासना के फल-स्वरूप उनको पुत्र रत्नकी प्राप्ति हुई । इससे उन दोनों को 'लुप्त पिंडोदक क्रिया, तथा- 'नापुत्रस्य लोकोऽस्ति' की चिन्ता सदा के लिए निवृत्त हो गयी । नवजात शिशु शान्त स्व-भावका और अपेक्षाकृत सुन्दर था अतः उसके माता-पिताने अपने-अपने इष्ट देवता के नाम से उसका नाम रख दिया "शिवराम "कृष्णन् ।" उसका उपनाम "पिच्चु" 'कुपी-यर" भी था । माता-पिताके विवाह के दीर्घ-काल बाद उत्पन्न होने से उसे कुपीयर कहते थे और बचपनसे से वह पागल-सा, अन्यमन-स्क, सांसारिक पदार्थों में जिसे कोई रस न हो वैसा होने से लोग उसे "पिच्चु " कहते थे ।

शाहाजी राजपुरम गांव वैदिक संस्कृ-तिका गढ़ होने से शिवराम कृष्णन् में बच-पन से ही वैदिक संस्कारों का अभिसिञ्चन हुआ फलतः यौवनावस्था में उनकी प्रतिभा निखर उठी । उनके सहपाठियों में महाभाष्यकार श्री गोपालकृष्ण शास्त्री, पण्डित श्री रामभद्र दीक्षित, कवि श्री अय्यवल वगैरह आगे जाकर प्रसिद्ध विद्वान हुए ।

जब श्री शिवरामकृष्णन ने सोलह वर्ष की वय में शास्त्रों का अध्ययन करके प्रसिद्धि प्राप्त कर ली तब माता-पिता ने उनका विवाह सम्बन्ध तय कर दिया । कहते हैं कि एक दिन जब वे क्षुधातुर होकर घर लौटे और अपनी माता से जल्दी-जल्दी भोजन परोसने के लिए कहा तब माता ने उसे मीठी वाणी में यह कहकर फटकार सुनायी, "पत्नी के यहां से लोग आज विशेष शुभ समाचार लेकर आये हैं अतः उनके सम्मान में मिष्ठान्न तैयार किया जा रहा है । ऐसे शुभ अवसर पर क्या

तू प्रकाश घण्टा क्षुधा को रोक नहीं सकता ?" यद्यपि यह घटना मामूली सी थी तथापि इसने शिवरामकृष्णन् के मन पर ऐसी भारी चोट पहुंचायी कि उनका जीवन चक्र ही घूम गया। उनमें पूर्वजन्मके सुसंस्कार उद्बुद्ध हो उठे। सार-असार का विचार शुरू हो गया। उन्होंने मन ही मन कहा कि घर में वधू आने से पहले ही जब मुझे इस प्रकार से डाट-फटकार खाकर तीव्र भूख सहन करनी पड़ रही है तो फिर वधू आने के बाद मेरी क्या दशा होगी ? "गृहारंभो हि दुःखाय" के शास्त्र वाक्य की सत्यता आज उनकी समझ में आ गयी। परिणामस्वरूप वे बिना किसी को सूचित किये ही घर के पिछले द्वार से चुपचाप बाहर निकल कर जंगल की ओर पलायित हो गये।

जंगल में जाकर उनमें सद्विचारका उदय हुआ कि ज्ञानकी प्राप्ति ही मोक्षका मूल साधन है। इसलिए "तद्विज्ञानार्थं सद्गुरुमेवा-भिगच्छेत्" अर्थात् ज्ञानके लिए सद्गुरुकी प्राप्ति होना आवश्यक है। अतः शिवराम-कृष्णन "परमशिव (परमशिवेन्द्रयति) नामक किसी योगीकी शरणमें गये। उनकी योग्यता देखकर योगीगुरुने उन्हें सविधि दण्ड-सन्यासकी दीक्षा दी और नाम रखा "सदाशिव ब्रह्म (सदाशिव ब्रह्मेन्द्रयति)। अब हम यहां से आगे अपने चरित्र नायक शिवराम-कृष्णनको "सदाशिवब्रह्म के नाम से ही सम्बोधित करेंगे। आचार्यात् एवं विदिताविद्या साधिष्ठं प्राप्तु" के शास्त्र वाक्यानुसार सदाशिव ब्रह्म ने योगीगुरुकी कृपासे गुरुप्रदत्त योग" की कुछ महत्त्वपूर्ण प्रक्रियाएं अल्प समय में ही सीख लीं। यह स्मरणीय है कि सदाशिव ब्रह्म के गुरु परमशिवने "शिवगीता भाष्य" और "दहर विद्या प्रकाशिका" नामक ग्रन्थोंकी रचनाकी है। परमशिव अपने ग्रन्थों में अपने गुरुका नाम 'अभिनव नारायणेन्द्र' बताते है। कुछ लोगोंका कहना है कि परम-शिव कुंभकोणम् के पीठाधीश थे किन्तु पीठाधीश सूचीको देखनेपर पता चलता है कि परमशिवके गुरु "सर्वज्ञ सदाशिवबोध" नामक यतिका नाम है, अभिनव नारायणेन्द्र नामक कोई यति मठाधीश नहीं रहे हैं। और भी एक महत्त्वपूर्ण बात यह है कि कुम्भ कोणम् पीठाधीश परमशिवका निर्वाण समय ई० स० १५८९ का है जब कि सदाशिव ब्रह्म का जन्मकाल प्रायः ई० स० १६६० के आस-पासका है। अतः सदाशिव ब्रह्मका कुम्भकोणम् पीठके साथ सम्बन्ध होना असम्भव है।

गुरुके सान्निध्यके निवास काल में सदाशिव ब्रह्मने अपने गुरुकी आज्ञानुसार ब्रह्मसूत्रपर "ब्रह्म तत्त्वप्रकाशिका एवं पातांजलि योग दर्शनपर "योग सुधाकर" नामक ग्रन्थोंकी रचना की। तत्पश्चात् उन्होंने "सिद्धान्त कल्पावली दक्षिणामूर्ति स्तोत्र, शिवमानस पूजा, आत्म विद्या विलास इत्यादि ग्रन्थोंकी

और कुछ भजन-कीर्तन की रचना की जिनकी विद्वत् समाजने मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की है।

सद्गुरुके सान्निध्य कालमें एक ऐसी घटना घटी, जिसने सदाशिव ब्रह्मको महान्त्यागी अवधूत बना दिया, जो इस प्रकार है। सदाशिव ब्रह्म शास्त्रार्थ में किसीको भी जीतने नहीं देते थे। एक दिन किसी महाविद्वान् के साथ शास्त्रार्थ करते समय सदाशिव ब्रह्मने ऐसी ठोस दलील कुछ कड़े शब्दों में प्रस्तुत की कि महाविद्वान्की बुद्धि कुंठित हो गयी। उसकी कड़ी हारसे उपस्थित लोग ठहाका मारकर हंस पड़े। महाविद्वान् को इस प्रकारका अपमान असह्य हुआ अतः उसने योगीगुरु परमशिवेन्द्र के पास जाकर सदाशिव ब्रह्मके दुर्व्यवहार के विषय में शिकायत की। यह सुनकर योगीगुरुने रुष्ट होकर शिष्य सदाशिव ब्रह्म को फटकार सुनायी "अब तेरा मुख कब बन्द होने वाला है।" गुरु के वाग्बाण से सदाशिव ब्रह्म अत्यधिक मर्माहत हुए। फिर भी अपने को सम्हालते हुए शान्त भावसे, नम्रवाणी में बोले, "इसी समयसे ही गुरुदेव। केवल आपकी आज्ञा की ही प्रतीक्षा कर रहा हूं।" यह सुनकर गुरुने उन्हें मौनव्रत की आज्ञा तो दे दी किन्तु गुरुको इस बातका पता नहीं था कि हाथमें आया हुआ शिष्यरत्न अब हाथसे सरक रहा है। सदाशिव ब्रह्मने अपने गुरुदेव का साष्टांग-दण्डवत्-प्रणाम करते हुए दण्ड कमंडलु, वस्त्रादिका परित्याग किया और आजीवन मौनव्रत धारण करना, दिगम्बर रहना, किसीसे कुछ भी याचना नहीं करना, निर्जन स्थानोंमें विचरण करते हुए अवधूती मस्ती में रहने की प्रतिज्ञा करते हुए गुरुगृहका सदाके लिए त्यागकर दिया। कहते है कि उनका त्याग ऋषभदेव, जड़भरत, शुकदेव वगैरह अवधूतोंके जैसा उच्चकोटिका था। श्रीमद् आदि शंकराचार्य महाराजने स्वरचित "विवेकचूड़ामणि नामक ग्रन्थमें अवधूत ब्रह्मज्ञानी की स्थितिके विषयमें लिखा है कि- "ब्रह्मज्ञानी अवधूत स्वेच्छानुसार सर्वत्र विचरण करता है-वह निर्भय है। कभी जंगल में तो कभी श्मशानमें सो जाता है और जिस मार्गपर जानेसे वेद भी शेष हो जाते हैं वहांपर वह संचरण करता है। यह बालकोंकी तरह दूसरोंकी इच्छानुसार परिचालित होता है, कभी नंगा, कभी वस्त्रालंकार मंडित रहता है और कभी-कभी तो उसका आच्छादन ज्ञानमात्र रहता है। कभी अबोध बालककी भांति, कभी उन्मत्तके समान और कभी पिशाचवत् व्यवहार करता है।"

सिद्ध पुरुष श्री सदाशिव ब्रह्म के विषय में कुछ चमत्कारिक प्रसंग निम्नलिखित हैं-

एक बार वर्षा ऋतुके दिनोंमें जब सदाशिव ब्रह्म कावेरी नदी के तटपर बैठे-बैठे समाधिमें डूब गये थे उस समय नदीमें अचानक बाढ़ आ गयी। नदीके तटपर ऊंचे टीलेपर स्थित गांवके कुछ लोग दूरसे

सिद्धपुरुष श्री सदाशिव ब्रह्म

(स्वामी दत्त योगेश्वर देव तीर्थ)

सोलहवीं शताब्दी में दक्षिण भारत की पुण्यसलिला कावेरी नदी के तटवर्ती गांवों में एक ऐसे काले रंग के और छोटे कद के देहवाले, विशाल आंखें और अजानबाहुवाले, मौनव्रतधारी तथा दिगम्बरवेशी चमत्कारी पुरुष के विषय में चर्चा इतनी हद तक पहुंच चुकी थी कि कई लोग उन्हें चिरंजीवी अश्वत्थामा मानते थे तो कई उन्हें महर्षि वेदव्यास ही समझते थे। इसी लिए लोग उनके दर्शनमात्रा से ही अपने को महाभाग्यशाली बनाने के लिए लालायित रहते थे। तंजौर और त्रिचिनापल्ली के जंगलों में निवास करने वाले भील लोगों का तो यहां तक का दावा था कि उन्होंने उन सिद्ध पुरुष का न केवल कई बार दर्शन ही किया है अपितु उन्हें भोजन भी कराया है। उन लोगों का कहना था कि सिद्ध पुरुष अपने हाथों से कभी-भी अन्नग्रहण नहीं करते थे। वे किसी से अन्न की भिक्षा भी नही मांगते थे। अजगर-वृत्ति से रहते थे अर्थात् कोई व्यक्ति जो कुछ कच्चा या पकाया हुआ अन्न उनके मुख में रख दे उससे वे निर्वाह कर लेते थे। वे सिद्ध पुरुष जब जहाँ लोगो के दृष्टि-पथ में आ जाते थे तब भक्त लोग हर्ष-विभोर हो उठते थे और तुरन्त ही उनके समीप जाकर श्रद्धाभक्ति पूर्वक उन्हें प्रणाम करते थे। उस समय यदि लोगों के पास कुछ अन्न होता तो उस अन्न को वे सिद्ध-पुरुष के मुख में रख देते थे जिसे सिद्ध पुरुष सीधे निगल जाते थे। उदरपूर्ति हो जाने पर सिद्ध पुरुष वहां से घने जंगलों में चले जाते थे। जंगलों में लकड़ी काटने वाले तथा मधुसंचय करने वाले कई लोगों ने सिद्ध पुरुष को जंगलों की गुहाओं में कई दिनों तक समाधि में डूबे देखा था। उस समय उनके देहकी चारों ओर एक अद्‌भुत ज्योति घूमती रहती थी। यह बात भी प्रसिद्ध थी कि जहां-जहां पर सिद्ध पुरुष निवास करते थे एवं विचरण करते थे वहां-वहां पर गुलाब की दिव्य सुगंध फैल जाती थी। उनके अलौकिक चमत्कारो के विषय में लोगों में कई कथाएं प्रचलित थीं।

वे सिद्ध पुरुष कौन होंगे? कहाँ के होंगे? उन्हें कौन-सी सिद्धियां किस तपस्या के फलस्वरूप प्राप्त हुई होंगी? इत्यादि के विषय में जानकारी प्राप्त करने की सबकी उत्सुकता होना स्वाभाविक है। तो आइये,हम आज यहां पर उन सिद्धपुरुष के विषय में सत्य जानकारी का अनावरण करें।

महाराष्ट्र के छत्रपति शिवाजी महाराज के वंशज मराठा राजा श्री शाहजी राज महा-

राज ई० सं० १६८४ से ई० सं १७१२ पर्यन्त तंजौर की गद्दी पर आसीन थे। उनका अमात्य श्री त्र्यंबक मखि वीर एवं धर्म भावापन्न व्यक्ति होने से राजा में भी धर्म-भाव अंकुरित हुआ था। इसी धार्मिक वृत्ति के कारण राजा ने अपने राज्य का तिरुवस-नाल्लूर नामक एक गांव वहां के चालीस सत्व गुणी वैदिक पण्डितो को ई० सं० १६९६ में दान में दे दिया था। राजा शाहजी राज द्वारा दान में मिलने के उपरान्त पण्डितों ने उस गांव का नाम "शाहाजी राजपुरम्' रख दिया। उन चालीस वैदिक पण्डितों में से एक थे श्री मोक्ष-सुन्दरम् अवधानी, जो आन्ध्र प्रांतीय थे। उनको स्त्री पार्वतअम्मल सुशील। पतिपरायणा एवं भगवद्भक्ता थीं। श्री मोक्ष सुन्दरम् भगवान् श्री राम और श्रीकृष्ण के उपासक थे जब कि पार्वती अम्मल शिवो-पासक थीं। इतने पर भी दोनों में कभी भी उपासना विषयक विचार संघर्ष नहीं होता था क्योंकि वे यह बात अच्छी तरह से सम-झते थे कि एक ही महासत्ता से समय-समय पर भगवान् के विभिन्न अवतार होते हैं। मूल में एक अद्वय तत्त्व ही है।। पति-पत्नी द्वारा अपने-अपने आराध्य देवता की श्रद्धा और भक्तिपूर्वक की गयी उपासना के फल-स्वरूप उनको पुत्र रत्नकी प्राप्ति हुई। इससे उन दोनों को 'लुप्त पिंडोदक क्रिया, तैश्चा-'नापुत्रस्य लोकोस्ति' की चिन्ता सदा के लिए निवृत्त हो गयी। नवजात शिशु अत्यन्त स्व-भावुका और अपेक्षाकृत सुन्दर था अतः उसके माता-पिताने अपने-अपने इष्ट देवता के नाम से उसका नाम रख दिया "शिवराम "कृष्णन्।" उसका उपनाम "पिच्चु" 'कुपी-यर" भी था। माता-पिताके विवाह के दीर्घ-काल बाद उत्पन्न होने से उसे कुपीयर कहते थे और बचपनसे से वह पागल-सा, अन्यमन-स्क, सांसारिक पदार्थों में जिसे कोई रस न हो वैसा होने से लोग उसे "पिच्चु" कहते थे।

शाहाजी राजपुरम गांव वैदिक संस्कृतिका गढ़ होने से शिवराम कृष्णन् में बच-पन से ही वैदिक संस्कारों का अभिसिंचन हुआ फलतः यौवनावस्था में उनकी प्रतिभा निखर उठी। उनके सहपाठियों में महाभाष्यकार श्री गोपालकृष्ण शास्त्री, पण्डित श्री रामभद्र दीक्षित, कवि श्री अय्यवल वगैरह आगे जाकर प्रसिद्ध विद्वान हुए।

जब श्री शिवरामकृष्णन् ने सोलह वर्ष की वय में शास्त्रो का अध्ययन करके प्रसिद्धि प्राप्त कर ली तब माता-पिता ने उनका विवाह सम्बन्ध तय कर दिया। कहते हैं कि एक दिन जब वे क्षुधातुर होकर घर लौटे और अपनी माता से जल्दी-जल्दी भोजन परोसने के लिए कहा तब माता ने उसे मीठी वाणी में यह कहकर फटकार सुनायी, "पत्नी के यहां से लोग आज विशेष शुभ समाचार लेकर आये है अतः उनके सम्मान में मिष्ठान्न तैयार किया जा रहा है। ऐसे शुभ अवसर पर क्या

तू प्रकाश घण्टा क्षुधा को रोक नहीं सकता ?" यद्यपि यह घटना मामूली सी थी तथापि इसने शिवरामकृष्णन् के मन पर ऐसी भारी चोट पहुंचायी कि उनका जीवन चक्र ही घूम गया। उनमें पूर्वजन्मके शुभसंस्कार उद्बुद्ध हो उठे। सार-असार का विचार शुरू हो गया। उन्होंने मन ही मन कहा कि घर में वधू आने से पहले ही जब मुझे इस प्रकार से डांट-फटकार खाकर तीव्र दुःख सहन करना पड़ रहा है तो फिर वधू आने के बाद मेरी क्या दशा होगी ? "गृहारंभो हि दुःखाय" के शास्त्र वाक्य की सत्यता आज उनकी समझ में आ गयी। परिणामस्वरूप वे बिना किसी को सूचित किये ही घर के पिछले द्वार से चुपचाप बाहर निकल कर जंगल की ओर पलायित हो गये।

जंगल में जाकर उनमें सद्विचारका उदय हुआ कि ज्ञानकी प्राप्ति ही मोक्षका मूल साधन है। इसलिए "तद्विज्ञानार्थं सद्गुरुमेवाभिगच्छेत्", अर्थात् ज्ञानके लिए सद्गुरुको प्राप्ति होना आवश्यक है। अतः शिवरामकृष्णन "परमशिव (परमशिवेन्द्रयति) नामक किसी योगीकी शरणमें गये। उनकी योग्यता देखकर योगीगुरुने उन्हें सविधि दण्ड-सन्यासकी दीक्षा दी और नाम रखा "सदाशिव ब्रह्म (सदाशिव ब्रह्मेन्द्रयति)। अब हम यहां से आगे अपने चरित्र नायक शिवरामकृष्णन्को "सदाशिवब्रह्म" के नाम से ही सम्बोधित करेंगे। आचार्यात् एवं विदिताविद्या साधिष्ठ प्राप्नु" के शास्त्र वाक्यानुसार सदाशिव ब्रह्म ने योगीगुरुकी कृपासे गुरुप्रदत्त योग की कुछ महत्त्वपूर्ण प्रक्रियाएं अल्प समय में ही सीख लीं। यह स्मरणीय है कि सदाशिव ब्रह्म के गुरु परमशिवने "शिवगीता भाष्य" और "दहर विद्या प्रकाशिका" नामक ग्रन्थोंकी रचनाकी है। परमशिव अपने ग्रन्थों में अपने गुरुका नाम 'अभिनव नारायणेन्द्र' बताते हैं। कुछ लोगोंका कहना है कि परमशिव कुंभकोणम् के पीठाधीश थे किन्तु पीठाधीश सूचीको देखनेपर पता चलता है कि परमशिवके गुरु "सर्वज्ञ सदाशिवबोध" नामक यतिका नाम है, अभिनव नारायणेन्द्र नामक कोई यति मठाधीश नहीं रहे हैं। और भी एक महत्त्वपूर्ण बात यह है कि कुम्भ कोणम् पीठाधीश "परमशिवका निर्वाण समय ई० स० १५८६ का है जब कि सदाशिव ब्रह्म का जन्मकाल प्रायः ई० स० १६६० के आस-पासका है। अतः सदाशिव ब्रह्मका कुम्भकोणम् पीठके साथ सम्बन्ध होना असम्भव है।

गुरुके सान्निध्यके निवास काल में सदाशिव ब्रह्मने अपने गुरुकी आज्ञानुसार ब्रह्मसूत्रपर "ब्रह्म तत्त्वप्रकाशिका एवं पातंजलि योग दर्शनपर "योग सुधाकर" नामक ग्रन्थोंकी रचना की। तत्पश्चात् उन्होंने "विज्ञान नौकावली, दक्षिणामूर्ति स्तोत्र, शिवमानस पूजा, आत्म विद्या विलास इत्यादि ग्रन्थोंकी

और कुछ भजन-कीर्तन की रचना की जिनकी विद्वत् समाजने मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की है।

सद्गुरुके सान्निध्य कालमें एक ऐसी घटना घटी, जिसने सदाशिव ब्रह्मको महान्त्यागी अवधूत बना दिया, जो इस प्रकार है। सदाशिव ब्रह्म शास्त्रार्थ में किसीको भी जीतने नहीं देते थे। एक दिन किसी महाविद्वान् के साथ शास्त्रार्थ करते समय सदाशिव ब्रह्मने ऐसी ठोस दलील कुछ कड़े शब्दों में प्रस्तुत की कि महाविद्वान्की बुद्धि कुंठित हो गयी। उसकी कड़ी हारसे उपस्थित लोग ठहाका मारकर हंस पड़े। महाविद्वान् को इस प्रकार-का अपमान असह्य हुआ अतः उसने योगीगुरु परमशिवेन्द्र के पास जाकर सदाशिव ब्रह्मके दुर्व्यवहार के विषय में शिकायत की। यह सुनकर योगीगुरुने रुष्ट होकर शिष्य सदाशिव ब्रह्म को फटकार सुनायी "अब तेरा मुख कब बन्द होने वाला है।" गुरु के वाग्बाण से सदाशिव ब्रह्म अत्यधिक मर्माहत हुए। फिर भी अपने को सम्हालते हुए शान्त भावसे, नम्रवाणी में बोले, "इसी समयसे ही गुरुदेव। केवल आपकी आज्ञा की ही प्रतीक्षा कर रहा हूं।" यह सुनकर गुरुने उन्हें मौनव्रत की आज्ञा तो दे दी किन्तु गुरुको इस बातका पता नहीं था कि हाथमें आया हुआ शिष्यरत्न अब हाथसे सरक रहा है। सदाशिव ब्रह्मने अपने गुरुदेव का साष्टांग-दण्डवत्-प्रणाम करते हुए दण्ड कमंडलु, वस्त्रादिका परित्याग किया और आजीवन मौनव्रत धारण करना, दिगम्बर रहना, किसीसे कुछ भी याचना नहीं करना, निर्जन स्थानोंमें विचरण करते हुए अवधूती मस्ती में रहने की प्रतिज्ञा करते हुए गुरु-गृहका सदाके लिए त्यागकर दिया। कहते हैं कि उनका त्याग ऋषभदेव, जड़भरत, शुकदेव वगैरह अवधूतोंके जैसा उच्चकोटिका था। श्रीमद् आदि शंकराचार्य महाराजने स्वरचित "विवेकचूड़ामणि नामक ग्रन्थमें अवधूत ब्रह्म ज्ञानी की स्थितिके विषयमें लिखा है कि- "ब्रह्मज्ञानी अवधूत स्वेच्छानुसार सर्वत्र विचरण करता है-वह निर्भय है। कभी जंगल में तो कभी श्मशानमें सो जाता है और जिस मार्गपर जानेसे वेद भी शेष हो जाते हैं वहांपर वह संचरण करता है। वह बालकोंकी तरह दूसरोंकी इच्छानुसार परिचालित होता है, कभी नंगा, कभी वस्त्रालंकार मंडित रहता है और कभी-कभी तो उसका आच्छादन ज्ञान-मात्र रहता है। कभी अबोध बालककी भांति, कभी उन्मत्तके समान और कभी पिशाचवत् व्यवहार करता है।"

सिद्ध पुरुष श्री सदाशिव ब्रह्म के विषय में कुछ चमत्कारिक प्रसंग निम्नलिखित हैं-

एक बार वर्षा ऋतुके दिनोंमें जब सदाशिव ब्रह्म कावेरी नदी के तटपर बैठे-बैठे समाधिमें डूब गये थे उस समय नदीमें अचानक बाढ़ आ गयी। नदीके तटपर ऊंचे टीलेपर स्थित गांवके कुछ लोग दूरसे

यह अप्रत्याशित भयावह दृश्य देखकर सदाशिव ब्रह्मको सुरक्षित स्थानमें जल्दी चले आनेके लिए जोर-जोरसे आवाज देने लगे किन्तु इससे सदाशिव ब्रह्म टससे मस होते नहीं दिखायी पड़े, पाषाणकी मूर्तिवत् वहींपर बैठे ही रहे क्योंकि वे समाधिस्थ थे। अतः देखते ही देखते बाढ़ उन्हें अपनी गोदमें समेटती हुई बहाकर ले गयी। यह दुःखद समाचार गांवमें फैलते ही सबके चेहरों पर विषाद छा गया। असंख्य आंखें अश्रुपात करने लगीं। कहते हैं कि इस घटनाके तीन मास बाद जब एक दिन गांवका मुखिया अपने मकान निर्माण कार्यके लिए नदी तटपरसे बालू लेनेके लिए गया तब एक स्थानपर फावड़ोंसे खोदनेपर वहींसे सिद्धपुरुष सदाशिव ब्रह्मके अंगके कटे हुए विभिन्न भाग उसे दिखायी पड़े। इस बातके गांवमें फैलनेपर देखते ही देखते वहांपर लोगोंकी बड़ी भीड़ जमा हो गयी। जब उपस्थित लोगोंमेंसे कुछ विशिष्ट व्यक्ति सदाशिव ब्रह्मके इस क्षत-विक्षत देहको अग्नि संस्कार करने या भूमिमें गाड़ देनेके बारेमें विचार-विनिमयकर रहे थे उसी समय देहके अलग-अलग भागोंमें कम्पन शुरू हुआ और देखते ही देखते वे सब एक दूसरे से योग्यरूप से जुड़कर पूरा देह बन गये और सदाशिव ब्रह्म अंगड़ाई लेकर उठ बैठे। यह आश्चर्यकारक दृश्य देखकर उपस्थित लोगोंने अपने दांतों तले अंगुलियां दबा लीं। योग साधनामें इस प्रक्रियाको 'खण्डयोग साधना" कहते है। तिब्बतके लामाओंमें यह साधना प्रचलित थी। भारतीय योगी अवधूत श्री तैलंग स्वामी, शीरडीके संत श्री साईबाबा वगैरह को यह साधना सिद्ध थी।

किसी बड़े जमीदारने कावेरी तटपरके एक जंगल को खरीदा था और उसकी लकड़ियां कटवाकर उन्हें सुरक्षित स्थानमें जमा करवाने के लिए कुछ मजदूर नियुक्त किये थे। सायंकालमें जब कटी हुई लकड़ियों की गठरियां बांधी गयी तब पता चला कि मजदूरों की संख्यासे एक गठरी अधिक है। जब मजदूरों का सरदार विचारकर रहा था उसी समय हृष्ट-पुष्ट देहवाले सदाशिव ब्रह्म वहांसे होकर गुजरे। सरदारने हांक मारकर उन्हें रोका और उनकी बिना अनुमति लिए ही झटसे उनके मस्तकपर शेष बची हुई लकड़ी की बड़ी गठरी रखते हुए उन्हें मजदूरोंका अनुसरण करनेका आदेश दे दिया। तदनुसार सदाशिव ब्रह्म शान्त भावसे सबके पीछे पीछे चलते हुए दो-तीन मील दूरके निर्दिष्ट स्थानपर पहुंचे। सब मजदूरों ने अपने-अपने मस्तकपरकी लकड़ियों की गठरियां लकड़ी भण्डार में उतार दीं। सदाशिव ब्रह्म के अपनी गठरी उतारते ही उसमें से अग्नि देवता प्रकट हुए और विशाल लकड़ी भण्डारको अल्प समय में ही जलाकर भस्मीभूत कर दिया। इस भारी चमत्कारको देखकर मजदूरोंका सरदार बड़ा भयभीत हो उठा अतः उसने सिद्धपुरुष सदाशिव ब्रह्मका

एवं उनकी महान् सिद्धिका पता चलनेपर उनके चरणोंमें लोट-पोट होते हुए क्षमा याचना की भोले-भाले सदाशिव ब्रह्म ने उसे क्षमा प्रदान की एवं आशीर्वाद देनेके उपरान्त वहां से जंगल की ओर चल दिये।

एक बार अँधेरी रात्रि में जब सदाशिव ब्रह्म किसी के खेत में से होकर जा रहे थे तब उन्होंने वहां पर एक स्थान में साफ करके तैयार किया हुआ धान्यका बड़ा ढेर देखा। शायद किसान लोग धान्यको उसी दिन अपने घर पहुंचाना चाहते होंगे किन्तु रात्रि हो जानेपर वे वैसा नहीं कर पाये होंगे, दूसरे दिन सुबह में उसे ले जानेका तय किया होगा। इसीलिए इसी प्रकार से धान्यके ढेरको खेत में ही रख छोड़ा होगा। धान्यके विशाल ढेरको देखते ही सदाशिव ब्रह्म उसके ऊपर चढ़कर वहीं पर लेट गये। भोर में उजाला होने पर जब किसानोंने धान्यके ढेरपर बादशाहकी तरह लेटे हुए नंग-धड़ंग सदाशिव ब्रह्म को देखा तब वे जल-भुन गये और लाठी-गड़ासे इत्यादि लेकर सदाशिव ब्रह्म को मारने के लिए दौड़े। यह देखकर सदाशिव ब्रह्मने उन लोगों के सामने ऐसी त्राटक (योगकी एक विशेष क्रिया जिसमें दृष्टि स्थिर की जाती है) की कि वे सबके सब पाषाण-मूर्तिवत् बन गये। हथियारों के साथ उनके हाथ हवा में ऊंचे स्थिर रह गये। इस बात को गांव में फैल जाने पर वहां पर लोगों का जमघट हो गया। कुछ समझदार धर्म-भाववाले व्यक्तियोंने जब सिद्धपुरुष सदाशिव ब्रह्म से प्रार्थना की तब कहीं उन्होंने अपराधी किसानोंपर कृपादृष्टि की और अपनी महान् योग-शक्ति के प्रभाव से सबको मुक्तकर दिया।

कहते हैं कि दक्षिण भारत के किसी एक राज्य का नवाब (सम्भवतः टीपू सुलतान) एक बार सपरिवार कावेरी तट के रम्य जंगल में सहेल करने के हेतु कुछ दिनों से डेरा डालकर पड़ा था। पूर्णिमाकी चांदनी रात्रि में जब सब लोग अपने-अपने तम्बू में निद्राधीन थे उस समय जंगल में घूमते हुए सदाशिव ब्रह्म वहांपर आ पहुंचे और सीधे उस तम्बू में घुस गये जिसमें नवाब की बेगम सो रही थी। रात्रि के समय अचानक नंगधड़ंग, श्याम वर्ण के अजीब-से आदमी की जनाना तम्बू में इस प्रकार उपस्थिति-से बेगम, जो सहसा जाग उठी थी शोर मचाने लगी। यह सुनकर वहांपर पहरेदार, कर्मचारी, नवाब वगैरह सबके सब लोग आ पहुंचे। यह देखकर नवाब तो इतना क्रोधावेश में आ गया कि उसने झट से तलवार निकालकर सदाशिव ब्रह्म के कन्धे पर ऐसा प्रहार किया कि क्षण-मात्र में ही उनका हाथ कटकर नीचे भूमिपर गिर पड़ा। इससे सदाशिव ब्रह्म के देह में से रक्त का झरना बहने लगा। इतने पर भी उन्होंने न तो चीत्कार किया, न मुखपर विषादकी रेखा ही अंकित की। वे देहाध्यास

से निजानन्द में डूबी हुई, उच्च स्थिति में वहां से चलने लगे। यह देखकर नवाब तो अवाक् रह गया। उसने अपने जीवन में कई छोटी-बड़ी लड़ाइया लड़ी थीं और कईयों का कत्ल किया था किन्तु उसने सदाशिव ब्रह्म के अतिरिक्त अभी तक एक भी ऐसा वीर पुरुष नहीं देखा था जो देह कट जानेपर भी स्थिर, शान्त, आनन्द में डूबा हुआ रहा हो। अतः सदाशिव ब्रह्म की अत्युच्चकोटि की ब्राह्मी-स्थिति से नवाब इतना प्रभावित हुआ कि वह अपने द्वारा किये हुए महा-अपराध के लिए क्षमा याचना-के हेतु उनका अनुसरण करने लगा। कहते हैं कि कई घण्टों के बाद जब सदाशिव ब्रह्म ने पीछे मुड़ कर नवाब की ओर देखा तो नवाब "तौबाह्-तोबाह्" पुकारता हुआ उनके चरणों पर गिरा और रोने लगा। जब सदाशिव ब्रह्म ने संकेत से उससे इस प्रकार रोने का कारण पूछा तब नवाब ने उन्हें अथ से इति पर्यन्त सब बात बता दी। यह सुनकर सिद्धपुरुष सदाशिव ब्रह्म के अपने कटे हुए हाथ पर दूसरे हाथ का स्पर्श किया इससे पूर्ववत हाथ बन गया। यह चमत्कार देखते ही नवाब को विश्वास हो गया कि सदाशिव ब्रह्म सचमुच ही बड़ा औलिया (सिद्ध पुरुष) है। कहते हैं कि नवाब की प्रार्थना से सदाशिव ब्रह्म ने उसे उपदेश दिया और उसके मस्तक पर हाथ रखकर आशीर्वाद भी दिया। फलस्वरूप नवाब उसी दिन से धार्मिक-वृत्तिवाला बन गया। कहते हैं कि नवाब ने अपने राज्य में वापस आकर हिन्दू एवं मुसलमानों को अपने-अपने धर्म में कई धार्मिक छूट दी और दोनों प्रजा में एक दूसरे के प्रति स्नेह सद्भावकी अभिवृद्धि की।

एक ऐसा भी अद्भुत प्रसंग है जिसमें सदाशिव ब्रह्म ने विभिन्न गांवों में रहनेवाले विभिन्न जाति के अपने कई भक्तों के निवास स्थान पर एक ही दिन एव एक ही समय में विभिन्न देह धारण कर, जाकर भिक्षा ग्रहण की थी। इस घटना से पता चलता है कि वे महायोगी थे। उनमें अपने साथ अन्यों को भी अदृश्य करने की तथा क्षणमात्र में ही अति दूर के स्थानों में पहुंच देने की योगशक्ति थी। इस बातका प्रमाण निम्नलिखित एक घटना है:—

एक बार सदाशिव ब्रह्म कावेरी तटवर्ती एक गांव में छोटे-छोटे बच्चों के साथ खेल रहे थे। उस समय कुछ बच्चोंने उनसे विनती की कि इन दिनोंमे मदुरामें जो वृषभ वाहन का बड़ा उत्सव चला था वह वे सब देखना चाहते हैं। मदुरा उस गांव से करीब ५०० मील दूर था जहांपर पैदल यात्रा करते हुए पहुंचने में कई दिन लग जाते। भोले-भाले बच्चों का विशेष आग्रह देखकर सदाशिव ब्रह्मने उन सबको अपने कन्धेपर बैठा लिया और आंखें मूंदने का आदेश दिया। अल्प समय के बाद ही जब बच्चोंको आंखें खोल देनेको कहा गया

तब वे सब यह देखकर हैरान रह गये कि उस समय वे मदुराके भगवान् सुन्दरेशके वृषभ वाहन उत्सव में उपस्थित थे। भक्तों की अपार भीड़, बाजे-गाजे, नाचगान देखकर बच्चे तो हर्ष विभोर हो उठे। उत्सव देख लेने तथा भगवान का प्रसाद लेने के बाद सभी बच्चों को सिद्धपुरुष सदाशिव ब्रह्म पूर्ववत् अपने कन्धेपर बैठाकार आंखे बन्द करवाकर अल्प समय में ही उनके गांव वापस ले आये। बच्चों ने अपने-अपने घरों में जाकर अपने माता-पिताको यह वृत्तान्त सुनाया किन्तु उनकी बात मानने के लिए वे लोग तब तक तैयार नहीं हुए जब तक कि बच्चों ने मदुरा के उत्सवका महाप्रसाद उन्हें नहीं दिखाया।

इस अद्भुत घटनाको सुनकर बच्चों के माता-पिता सिद्धपुरुष सदाशिव ब्रह्मके दर्शनाथ दौड़ पड़े किन्तु उन लोगोंके आने से पहले ही सदाशिव ब्रह्म वहा से चल चुके थे कावेरीके घने जंगलकी ओर।

इतिहास इस बातका प्रमाण है कि ई० सं० १७११ से ई० सं० १७२८ तक तंजोर में राज्य करनेवाले मराठा राजा श्री सरभोजी महाराज के विशेष आदेश से उनका अमात्य श्री मल्हारी पण्डित सिद्धपुरुष सदाशिव ब्रह्मको दिगम्बपुरम् नाम के गांव में मिला था। पुत्र रत्नकी प्राप्तिके लिए राजा की विशेष प्रार्थना सुनकर सदाशिवब्रह्मने उसे आशीर्वाद दिया था इसके फलस्वरूप उसकी रानी ने एक शुभ दिनपर पुत्ररत्न को जन्म दिया था। ऐसा ही एक प्रसंग पुदुकोटके राजा के विषय में है। श्री विजय रघुनाथ राय तौडेमान (ई० सन् १७३० ई० से ई० सन् १७६९) पुदुकोटाका राजा था। वह तिरुवेरांगुलम नामक गांवके समीपस्थ जंगल में जाकर सिद्धपुरुष सदाशिव ब्रह्म को मिला था और उन्हींके चरणों में राज्य की उन्नतिकी तथा अपने वंश-विस्तार के हेतु सन्तान की याचना की। सदाशिव ब्रह्म ने उसपर अनुग्रह करके जिस वालुका पर लिख कर मन्त्रोपदेश किया था उसको राजा अपने साथ राजमहल में ले आया था और उस पर एक सुन्दर मन्दिर बनवाया। सदा-शिव ब्रह्मके कहनेपर राजा ने दक्षिणामूर्ति तथा बाला परमेश्वरी की उपासना शुरू कर दी। फलस्वरूप कालान्तर में उसे पुत्र की प्राप्ति हुई। एक दिन जब सदाशिव ब्रह्म करूरके समीपके नेरूर नामक गांवमें एक सुन्दर विल्ववृक्षके नीचे बैठे हुए थे तब उन्होंने वहीं पर शरीर छोड़ने का संकल्प किया। अतः गांव के अपने भक्तों को एकत्रित करके उसी स्थान में एक गड्ढा खुदवाया। तत्पश्चात् भूमि पर लिखकर लोगों को सूचित किया कि मैं यहां पर जीवित समाधि ले रहा हूं। मेरे द्वारा गड्ढे में प्रवेशकर जीवित समाधि लेनेके बाद यहां

पर काशीसे एक ब्राह्मण आयेगा । उसके पास में एक बड़ा शिवलिंग होगा जिसे तुम लोग मेरी समाधिके ऊपर सविधि स्थापित कर देना । मैं इसी पवित्र भूमि पर सदैव हूँ ऐसा विश्वास रखने वाले यात्री की सर्व मन कामना पूर्ण होगी । इस स्थानको सदैव पवित्र रखना इस प्रकार का अन्तिम आदेश उपदेशादि देकर सिद्धपुरुष सदाशिव ब्रह्म ज्येष्ठ मासकी शुक्ला दसवीं के दिन पर शुभ मुहूर्त में असंख्य भक्तोंकी उपस्थिति में गड्ढे में उतरे और सब पर कृपादृष्टि द्वारा आशीर्वादकी वृष्टि करके पद्मासन लगाकर बैठते ही उनके ब्रह्मरंध्रके फटने की आवाज हुई । दिव्य ज्योति असीम आकाश में विलीन हो गयी । उपस्थित जनता ने सिद्धपुरुष सदाशिव ब्रह्मके नामका जय जयकार किया । बाद में उनके देहको मिट्टी में समाधि दी गयी ।

कुछ समय के बाद ही वहां पर काशी का एक ब्राह्मण शिवलिंग के साथ उपस्थित हुआ । उसी शिवलिंग को सदा शिव ब्रह्म की समाधि के ऊपर स्थापित किया गया । कुछ भक्तों ने काशी के ब्राह्मण को कुछ दक्षिणा देनी चाही किन्तु वह लोगों द्वारा बहुत खोजने पर भी कहीं नहीं मिला । उसके विषय में आखिर यह बात निश्चित हुई कि उस ब्राह्मण के रूप में साक्षात् काशी विश्वनाथ ही आये थे जो शिवलिंग देकर अदृश्य हो गये ।

सिद्धपुरुष सदाशिव ब्रह्म का नेरूर गाव का समाधि स्थान आज एक बड़ा तीर्थ स्थान बन गया है जो यात्रियों को मनो-कामना पूर्ण करता है ।

प्रमाद की दीवार !

सफलता के अभिलाषियों को अपने कार्य्य क्षेत्र का मार्ग रोक कर खड़ी हुई प्रमाद की दीवार को तोड कर आगे बढ़ना होगा । आज के काम को कल पर छोड़ने का उपदेश करने वाली चित्त वृत्ति को ही प्रमाद कहते हैं । प्रमाद की इस चित्त वृत्ति को कुचलने के लिए सफलता के अभिलाषियों को 'आज का काम आज नहीं बल्कि अभी करके दम लेंगे' इस 'निश्चय वृत्ति' को जन्म देकर आगे लाना होगा, प्रमाद की यह दीवार तभी टूट सकेगी ।

—— आत्मानंद महाराज

श्री रामचरितमानस में योग का वर्णन

(श्री विजयसिंह एम०एस-सी०)

'मानस' के अन्तर्गत श्री गोस्वामी तुलसीदास जी ने 'योग' 'योगी' 'योगीश्वर' तथा ज्ञानी-विग्यानी इत्यादि शब्द भिन्न-भिन्न स्थलों में प्राकृत भाषा में 'य' को 'ज' तथा 'ज्ञ' को 'ग्य' उच्चारण करते हुये लगभग तीन सौबार से भी अधिक उपयोग किये हैं। सुन्दर आध्यात्मिक कथाओं द्वारा सामाजिक कुरीतियों को दूर करने के लिये व्यक्ति विशेष के व्यवहार का निर्देशन करते हुये साथ ही मनुष्य अपने परमलक्ष्य "मोक्ष" को कैसे प्राप्त कर सकता है इसके लिए गोस्वामी जी ने यथा विधि योगमार्ग की महत्ता का भी वर्णन किया है। जिस समय मुगलों की सभ्यता से प्रभावित हिन्दू जनता धर्म भ्रष्ट हो विलासता-जन्य सुख को ही महान आनन्द समझ कर सामाजिक व्यवहार तक को भूल बैठी थी उसी समय काशी में तुलसीदास घोर तपश्चर्या में लगे हुये भगवान् सदाशिव की आराधना कर रहे थे। परिणाम स्वरूप इस कठिन कलिकाल में ही भगवान शंकर का स्थूल दर्शन गोस्वामी जी को प्राप्त हुआ तथा आदिनाथ की आज्ञा से श्री राम चरित्र वर्णन करने की कवित्व शक्ति एवं प्रेरणा मिली। कहने का तात्पर्य यह है कि तप, जप द्वारा संग्रहीत किया हुआ पुण्य एक न एक दिन मनुष्य को योग मार्ग में लगा ही देता है। पुण्य के प्रभाव से सुन्दर संस्कारों का उदय होता है। उस समय परमशक्ति का दर्शन या किसी सिद्ध संत की संगति अवश्य ही मिल जाती है। इसी लिए गोस्वामी जी किसी पंथ या वाद के झमेले को न स्वीकार कर केवल सत्य को ही मानस के अन्तर्गत निहित किया है जिससे आज मानव जीवन को स्पष्ट रूप से धर्म कर्म के क्रियात्मक रूप का ज्ञान होने लगा है। वास्तविक रूप धर्म का कैसा है और मनुष्य जो साधारण पहुँच वाला है उसको किस प्रकार धर्म के सत्यरूप का ज्ञान हो सकता है इसके बारे में निम्न पंक्तियों से स्पष्ट हो जाता है।

सदगुर ग्यान बिराग जोग के।
बिबुध बैद्य भव भीम रोग के॥
जननी जनक सिय राम प्रेम के।
बीज सकल व्रत धरम नेम के॥
× × ×
मंत्र महामनि बिषय ब्याल के।
मेटत कठिन कुअंक भाल के॥
हरन मोहतम दिनकर कर से।
सेवक सालि पाल जलधर से॥

— बालकाण्ड —

अर्थात् — ज्ञान, विराग, जोग के लिये तो सद्गुरुदेव भगवान हैं ही साथ ही सांसारिक कष्टों से मुक्ति प्रदान करने के लिये वैद्यों में श्रेष्ठ अश्वनीकुमार की तरह प्रभाव वाले हैं। भगवान श्री रामचन्द्र एवं जगत-जननी सीताजी के प्रति भक्ति उत्पन्न करने के लिये माता-पिता हैं (यहां सिय-राम से इष्ट का आशय ही लेना चाहिये अर्थात् गुरुदेव भगवान की कृपा से ही इष्ट के चरणों में प्रेम उत्पन्न होता है) तथा सभी प्रकार के धर्म कर्म के लिये अनाथ-नाथ गुरुदेव ही मूल कारण हैं जिनके द्वारा मनुष्य के कठिन भाग्य अर्थात् दुर्भाग्य भी सहजता से बदल दिये जाते हैं। इसलिये अध्यात्म मार्ग हो या सांसारिक कष्टों से निवृत्ति पाने के लिए एकमात्र आधार गुरुदेव भगवान ही हैं।

योग तथा योगी के यथार्थ लक्षण

श्री रामचरित मानस में अष्टाङ्ग योग (यम, नियम, आसन ,प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि) के अंतिम दो तथा शुरू के दो अंगों का विस्तारपूर्वक वर्णन मिलता है। यम, (देहा दो विरक्त यमः)

अहिंसा, चोरी न करना, सत्यबोलना, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह)।

नियम (" स्वात्मन्येऽ नुरक्तिः नियमः,

शौच, सन्तोष, तप और स्वाध्याय

अर्थात् प्रणवादिक जाप, ईश्वर प्रणिधान, ध्यान समाधि का रूप गोस्वामी जी ने मानस के महान तेजस्वी पात्रों के जीवन चरित्र वर्णन में बार-बार दिखाकर तथा उनके द्वारा अनुगामी व्यक्तियों को उपदेश दिलाकर किया है। योग का तथा योग स्थितियों का बड़ाही सूक्ष्म वर्णन उत्तर काण्ड में अनेक उपमाओं द्वारा किया गया है।

सात्त्विक श्रद्धा धेनु सुहाई।
जौं हरि कृपाँ हृदयँ बस आई॥
जप तप ब्रत जम नियम अपारा।
जे श्रुति कह सुभ धर्म अचारा॥

× × ×

जोग अगिनि करि प्रगट तब
कर्म सुभासुभ लाइ।
बुद्धि सिरावै ग्यान घृत
ममता मल जरि जाइ॥

× × ×

सोहमस्मि इति बृति अखंडा।
दीप सिखा सोइ परम प्रचंडा॥
आतम अनुभव सुख सुप्रकासा।
तब भव मूल भेद भ्रम नासा॥
प्रबल अविद्या कर परिवारा।
मोह आदि तम मिटइ अपारा॥
तब सोइ बुद्धि पाइ उँजियारा।
उर गृह बैठि ग्रंथि निरुआरा॥

— उत्तर काण्ड —

यहाँ "सोहमस्मि इति बृति अखंडा" तथा "आतम अनुभव सुख सुप्रकासा" समाधि

अवस्था को दर्शाते हैं किस प्रकार से समाधि में जीव उस ब्रह्म सत्ता में मिलकर केवल उस सत्ता का ही भान सर्वत्र करते हैं तथा समाधि लाभ कर व्यक्ति अपने आत्म अनुभव से उत्पन्न सुख से सांसारिक वस्तुओं द्वारा मिलने वाले आनन्द को तुच्छ एवं त्याज्य जानकर मोह इत्यादि से परे हो जाता है शास्त्रों का भी कथन है – आत्मज्ञान केवल समाधि अवस्था में ही प्राप्त होता है।

यदापंचावतिष्ठन्ते,
ज्ञानानि मनसा सह।
बुद्धिश्च न विचेष्टते,
तमाहु परमागतिम् ॥

अर्थात्— आत्म ज्ञान मनुष्य को समाधि द्वारा प्राप्त होता है। उस समाधि का लक्षण यह है कि पाँचों इन्द्रियाँ (ज्ञानेन्द्रियाँ) मन के साथ निश्चल हो जावें और बुद्धि भी चेष्टा न करे उसे ही संतजन समाधि या परमगति कहते हैं।

मानस के एक सुन्दर स्थल में गोस्वामी जी ने मन को भौंरे की उपमा दी है। जिस प्रकार भौंरा कमल पर आसक्त होकर उसी पर सुबह का मण्डराता हुआ एकीकार हुआ शाम तक मण्डराता रहता है योगीजन ध्यान में अपने मन को एकाग्र किये हुये उसी प्रकार इष्ट के चरण कमलों पर मन रूपी भौंरे को मण्डराया करते हैं।

करमधुप मन मुनि योगिजन
जे सेइ अभिगत लहैं।

इसी प्रकार मन की एकाग्रता से ही ध्यान में लयता प्राप्त होने का वर्णन मानस में कई स्थलों पर उदाहरणों द्वारा किया गया है। श्री रामचरित्र का वर्णन जिस समय जगत-स्वामी शंकर भगवान जगत जननी पारबती जी को सुनाने जा रहे हैं उस समय प्रेमविह्वल होकर भगवान शंकर श्री रामचन्द्र जी के ध्यान में मग्न हो जाते हैं।

मगन ध्यान रस दंड जुग
पुनि मन बाहेर कीन्ह।
रघुपति चरित महेस
तब हरषित बरनै लीन्ह ॥

मन की स्थिरता या अन्तरमुखी वृत्ति ध्यान का एक प्रारम्भिक रूप है जिसके बिना ध्यान योग में प्रवेश करही नहीं सकता।

मनुथिर करि तब संभु सुजाना।
लगे करन रघुनायक ध्याना ॥

योग युक्त व्यक्ति का परिचय तथा स्वाभाविक गुणों का वर्णन अनेक स्थलों पर कई भाग करके वर्णन किया गया है। योगी काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह, मत्सर इन छः विकारों को जीते हुये, पाप रहित, कामना रहित, स्थिर बुद्धि, सर्वत्यागी, धीर-वीर क्षमाशील बाहर-भीतर से पवित्र सुख के धाम असीम ज्ञानवान, इच्छारहित, मिताहारी,,

सत्यनिष्ठ, कवित्व शक्ति सम्पन्न, दूसरों को मान देने वाले, अभिमान रहित, सर्व गुणों के घर, संसार के दुःखों से रहित, सर्वदा ब्रह्म लीन योगी जन सब प्रकार के संदेहों से मुक्त होते हैं ।

षट बिकार जित अनघ अकामा ।
अचल अकिंचन सुचि सुख धामा ॥
अमित बोध अनीह मित भोगी ।
सत्यसार कवि कोविद जोगी ॥
सावधान मानद मदहीना ।
धीर धर्म गति परम प्रवीना ॥
गुनागार संसार दुख,
रहित बिगत संदेह,
तजि मम चरन सरोज ।
प्रिय तिन्ह कहुँ देह न गेह ॥

[अरण्यकाण्ड]

एहि जग जामिनि जागहिं जोगी ।
परमारथी प्रपंच बियोगी ॥
जानिअ तबहिं जीव जग जागा ।
जब सब विषय विलास बिरागा ॥

योगी ब्रह्म की सच्ची उपासना योग द्वारा प्राप्त ज्ञान से भली प्रकार जानकर करता है। अवतार का भी बोध उस विशेष शरीर के माध्यम से योग शक्ति द्वारा संसार में किये गये अलौकिक कार्यों से ही जाना जाता है । मानस के श्री रामचन्द्र साधारण भूपति ही नहीं स्वयं ब्रह्म हैं अनेकों ब्रह्म-ज्ञानी योग साधकों द्वारा विधि पूर्वक आदर सत्कार प्राप्त किये हैं तथा यगो बल से अभिमंत्रित बाणों द्वारा अनेक निशाचरों को पलमात्र में भस्म करदिया है। जयन्त द्वारा श्री रामचन्द्र की ब्रह्मशक्ति की परीक्षा उस समय हो जाती है जब स्वयं ब्रह्मा, शंकर तथा देवराज इन्द्र उसे शरण देने से साफ इन्कार कर जाते हैं। गोस्वामी जी ने इसी लिये जब-जब भगवान अवधपति राम की स्तुति की है या किसी देवगण से कराई हैं उसमें ध्यान- योग (शब्द) से श्रीराम का ब्रह्म जानना ही उल्लेख किया है।

राम ब्रह्म परमारथ रूपा ।
अविगत अलख अनादि अनूपा ॥

[अयोध्याकाण्ड]

जेहि लागि बिरागी अति अनुरागी
बिगतमोह मुनिबृंदा ।
निसि बासर ध्यावहिं गुन गन ।
गावहिं जयति सच्चिदानंदा ॥

इसी प्रकार एक योगी ध्यान द्वारा कैसे ब्रह्म सुख को प्राप्त करता रहता है और ध्यान जनित सुख में संसार को भूला हुआ उस अकथ्य सत्ता का किन-किन रूपों में दर्शन प्राप्त करता है, ऐसी अवस्था में न तन की सुधि रह जाती है न संसार की किसी प्रकार की गति का ही ज्ञान रहता है। मानस में मुनि सुतिक्षण जी की उस समय की दशा का वर्णन निम्न पंक्तियों में देखें जब श्रीराम-चन्द्र जी स्वयं उनके आश्रम पर पहुँच कर

वर्णन देने वाले हैं ।

अतिसय प्रीति देख रघुबीरा।
प्रगटे हृदय हरन भव-पीरा॥
× × ×
मुनहि राम बहु भाँति जगावा।
जाग न ध्यान जनित सुख पावा॥
भूप रूप तब राम दुरावा,
हृदयँ चतुर्भुज रूप देखावा॥
आगे देखि राम तन स्यामा।
सीता अनुजसहित सुख धामा॥
परेउ लकुट इव चरनन्हि लागी,
प्रेम मगन मुनिवर बड़भागी॥
[अरण्यकाण्ड]

ध्यान द्वारा उस परम शक्ति का दर्शन एवं निरूपण का वर्णन मानस में बार बार किया गया है। साधक समाधि अवस्था में ब्रह्म को जानता हुआ स्वयं ब्रह्ममय हो जाता है। भगवान राम योगियों द्वारा ध्यान द्वारा किस प्रकार जाने जाते हैं। निम्न पंक्तियों में देखने को मिलता है-

जेहि श्रुति निरंजन ब्रह्म ब्यापक,
बिरज अज कहि गावहीं।
करि ध्यान ग्यान बिराग जोग,
अनेक मुनि जेहि पावहीं॥
× × ×
पस्यंति जे योगी जतन करि
करत मन गो बस सदा॥
[अरण्यकाण्ड]

गोस्वामी जी ने उत्तर काण्ड में काकभुसुंड जी को सद्गुरुदेव द्वारा प्राप्त योग दीक्षा का बड़ा ही रोमहर्षक वर्णन किया है। श्री गुरुदेव भगवान के क्रोध को शांत से सहनकर श्राप को सिर पर धारण कर तथा प्रणाम करके जब काकभुसुंड जी जाने लगते हैं तो स्वभाव से ही दयासागर गुरुदेव स्वयं पुनः बुलाकर मान करते हुये 'राम मन्त्र' देकर योग मार्ग में लगा देते हैं।

अतिबिसमय पुनि पुनि पछताई,
सादर मुनि मोहि लीन्ह बोलाई॥
मम परितोष बिबिध बिधि कीन्हा,
हरषित राम मंत्र तब दीन्हा॥
बालक रूप राम कर ध्याना,
कहेऊ मोहि मुनि कृपानिधाना॥
सुंदर सुखद मोहि अति भावा।
सो प्रथमहि मैं तुम्हहि सुनावा॥

ध्यान शक्ति से योगी भूत भविष्यत् को हर प्रकार से जान लेता है तथा मन की एकाग्रता के बल से बहुत तीव्र संकल्प शक्ति वाला हो जाता है। भगवान सदाशिव से जब उनकी धर्मपत्नी सती ने श्री रामचन्द्र जी की परीक्षा लेने के बारे में रहस्य को छिपाया उसी समय त्रिभुवनपति शंकर ध्यान द्वारा सारा सती-चरित्र ज्यों का त्यों देख लेते हैं।

तब शंकर देखऊ धरि ध्याना।
सतीं जो कीन्ह चरित सबु जाना॥
[बालकाण्ड]

इसी प्रकार इष्ट की ध्यानोपासना का

वर्णन निम्न पद्यों में देखें-

मुनि धीर योगी सिद्ध संतत्
विमल मन जेहि ध्यावही।
कहि नेति नेति निगम पुरान
आगम जासु कीरत गावही॥

[बालकाण्ड]

धन्य ते नर एहि ध्यान
जे रहत सदा लय लीन॥

श्री हनुमान जी भगवान श्रीराम को जगत जननी सीता जी के लंका में निवास काल का वर्णन करते हुये कहते हैं-

नाम पाहरू दिवस निसि
ध्यान तुम्हार कपाट।
लोचन निज पद जंत्रित
जाहि प्रान केहि बाट॥

[सुन्दरकाण्ड]

इसी प्रसंग में समाधि की दो रोचक स्थितियों का वर्णन यहाँ कर देना उत्तम होगा। समाधि अवस्था में योगी बाह्य गतियों को सर्वथा भूलकर मन, बुद्धि दोनों से स्थिर हुआ ब्रह्म सुख को प्राप्त करता है। सती के व्यवहार से दुःखित होकर भगवान शिव कैलास पर्वत पर श्री रामचन्द्र को स्मरण करते हुये अपनी प्रतिज्ञा को याद कर (सती को पुनः इसी शरीर से स्त्री रूप में स्वीकार न करने की बात) समाधि में लीन हो जाते हैं और वह समाधि सत्तासी हजार वर्ष व्यतीत हो जाने पर खुलती है।

तँह पुनि संभु समुझि पन आपन।
बैठे बट तर करि कमलासन॥
संकर सहज सरूप सम्हारा।
लागि समाधि अखंड अपारा॥
बीतें संबत सहस सतासी।
तजी समाधि संभु अविनासी॥

[बालकाण्ड]

एक बार देवर्षि नारद हरि स्मरण करते हुये मन की स्थिरता से समाधि में लीन हो गये उस समय प्रजापति द्वारा दिया गया शाप उनके उपर अपना असर नहीं दिखा पाया क्यों कि समाधि अवस्था में जीव, शुद्ध परम शक्ति में लीन होकर स्वयं ब्रह्ममय हुआ रहता है।

सुमिरत हरिहि श्राप गति बाधी।
सहजविमल मन लागि समाधी॥

मानस के अधिकांश पात्र योगी हैं।

अनेक मुनि, राजा, कविगण योग बल से युक्त थे। मानस के भिन्न-भिन्न स्थलों में योग-शक्ति का बाह्य परिचय देखने को प्रचुरता से मिलता है। निम्न चौपाइयों द्वारा कुछ उदाहरण देखें।

सुक सनकादि सिद्ध मुनि जोगी।
नाम प्रसाद ब्रह्म सुख भोगी॥
भये विगतश्रम राम सुखारे।
भरद्वाज मुनि बचन उचारे॥

आजु सफल तप तीरथ त्यागू।
आज सफल जप जोग विरागू ॥
अत्रि आदि मुनिवर बहु बसहीं।
करहिं जोग जप तप तन कसहीं
पिता जनक देउ पटतर केही।
करतल भोगु जोगु जग जेही ॥

इसी प्रकार सवरी द्वारा भगवान श्री रामचन्द्र जी के युगल श्री चरणों का दर्शन करने के पश्चात् योग अग्नि में शरीर छोडने की चर्चा मानस में की गयी है। एक स्थल पर मुनि सरभंगी जी ने भी समान रूप से भगवान श्री राम के दर्शन प्राप्त कर लेने पर योग अग्नि द्वार शरीर छोड़ दिये हैं।

असकहि योग अगिन तनु जारा।
राम कृपा बैकुण्ठ सिधारा ॥

सती भगवान शिव की अर्धाङ्गिनी जब पिता के घर हो रहे यज्ञ में अपने पति का यज्ञ भाग नहीं खतीं तो दुःखी होकर अपने आराध्यदेव भगवान शंकर जी का चिन्तन मन में करती हुयी शरीर को योग अग्नि में भस्म कर देती हैं।

तजिहउँ तुरत देह तेहि हेतू।
उर धरि चन्द्रमौलि वृषकेतू ॥
असकहि जोग अगिन तनु जारा।
भयउ सकल मख हाहाकारा ॥

जब वही भगवती सती हिमालय के घर पार्वती होकर जन्मती हैं तथा भगवान शंकर जी को पति के रूप में प्राप्त करने के हेतु कठोर तप में लगी हैं तब परिणाम स्वरूप भगवान भोले नाथ प्रसन्न होते हैं इसी प्रसग में काम दहन के बाद सप्तर्षि पार्वती के धैर्य की परीक्षा लेने हेतु काम का जारा जाना पार्वती जी को बताते हैं। उस समय जगत जननी पार्वती भगवान शिव को अकाम जोगी की संज्ञा से सम्बोधित करती हैं।

हमरें जान सदा सिव जोगी।
अज अनवद्य अकाम अभोगी ॥

देवर्षि नारद जी जिस समय भगवान विष्णु जी के माया में भ्रमित होकर विवाह हेतुसुन्दर तन प्राप्त करने के लिये याचना कर रहे थे। भगवान ने उनको उपदेश करते हुये योगी शब्द से विभूषित किया है।

कुपथ माग रुज ब्याकुल रोगी।
बैद न देइ सुनहु मुनि जोगी ॥
[बालकाण्ड]

योग के अणिमादिक सिद्धियों के बल में नाना प्रकार के रूप धारण करना शरीर को इच्छानुसार विस्तार प्रदान करना आकाशगमन करना तथा प्राणायाम द्वारा अनन्त बलराशि का बन्दरों में देखने को मिलता है।

यहाँ एक बात अवश्य विचारणीय है-जिसे भली प्रकार से समझ से समझ लेना चाहिये। असुरों, राक्षसों (जैसे रावण, मेघनाद) इत्यादि का भी अनेक प्रकार की आसुरी माया द्वारा अन्तर्ध्यान होजाना योग नहीं है। यद्यपि वह भी मन की एक

विशेष शक्ति का ही परिणाम है परन्तु उनको तम प्रधान साधनों से सिद्ध होकर प्रकृत के कुछ रहस्यों पर अधिकार प्राप्त करना ही कहा जायेगा। क्योंकि प्रभक्ष्य, मदिरा एवं आसुरिक शक्तियों की उपासना से ही ऐसी मानसिक एकाग्रता उनको प्राप्त थी।

श्री हनुमान जी ने अपने शरीर का विस्तार कई स्थलों पर किया है उन्हीं में से एक उदाहरण देखें —:

जोजन भरि तेहिं बदनु पसारा।
कपि तनु कीन्ह दुगुन विस्तारा॥
सोरह जोजन मुख तेहिं ठयऊ।
तुरत पवनसुत बत्तिस भयऊ॥
जस जस सुरसा बदनु बढ़ावा।
तासु दून कपि रूप देखावा॥
सत योजन तेहिं आनन कीन्हा।
अति लघु रूप पवनसुत लीन्हा॥

× × ×

रहाननगर बसन घृत तेला।
बाढ़ी पूंछ कीन्ह कपि खेला॥

समूह में जिस समय कपियों का जूलूस सेतु पार कर रहा था उस समय ही कितने बन्दर आकाश मार्ग से भी गमन कर रहे थे।

नख आयुध गिर पादप धारी।
चले गगन महं इच्छा चारी॥

× × ×

सेतु बंध भई भीर अति।
कपि नभ पंथ उड़ाहीं॥

समाधि की योग्यता वाले व्यक्ति का भाव द्वारा कहा गया शब्द अक्षरशः सत्य होता है। श्राप देने, देकर मिटाने तथा कृपा करने का पूरा सामर्थ्य होता है। योगिराज नारद जी द्वारा भगवान जगतपालक श्री बिष्णु जी को दिया गया श्राप भगवान को ज्यों का त्यों भुगतना पड़ा।

बंचेहु मोहि जवनि धरि देहा।
सोई तनु धरहु श्राप मम एहा॥
कपि आकृति तुम्ह कीन्हि हमारी।
करिहहिं कीस सहाय तुम्हारी॥
मम अपकार कीन्ह तुम्ह भारी।
नारि विरहं तुम्ह होब दुखारी॥

देवर्षि नारद द्वारा इसी प्रकार शिवगणों को श्राप की गुरुता कम करने हेतु पुनः अतुलित बल, धनवान होकर जन्म लेने के बाद भगवान राम द्वारा युद्ध में मारा जाकर मोक्ष प्राप्त करने का अनुग्रह हुआ है।

परमसत्ता की मानवी लीला देखकर जब भगवान सदाशिव के साथ सर्वदा निवास करने वाली अर्धाङ्गिनी सती नहीं पहचान सकी तो भला साधारण जीव ऐसी अवस्था में क्या मान सत्कार करेगा। भगवान राम स्वयं परात्पर ब्रह्म एवं योगी थे इसका सबसे उत्तर रूप दक्षकुमारी को दिये गये ज्ञान में देखने को मिलता है।

सती दीख कौतुकु मग जाता।
आगे रामु सहित श्रीभ्राता॥
फिर चितवा पाछें प्रभु देखा।
सहित बंधु सिय सुन्दर बेषा॥

देखे सिव विधि विष्नु अनेका।
अमित प्रभाव एक ते एका॥
अवलोके रघुपति बहुतेरे।
सीता सहित न वेष घनेरे।

योगेश्वर भगवान श्रीराम का निर्माण कायथा:। श्री राम ने कई जगह-जगत आत्मा श्री कृष्णचन्द्र की तरह एक ही समय में अनेक रूप धारण करके लीला की। खरदूषण द्वारा युद्ध करने पर अकेले राम अनेक राम हो गये। युद्ध भूमि में राक्षसों को जहाँ-तहाँ राम ही राम दीखने लगा यह भी योग लीला। अयोध्यावासियों से मिलने का वर्णन देखें —

अमित रूप प्रगटे तेहि काला
जथा जोग मिले सब हि कृपाला॥

मानस में योग सिद्धियों द्वारा लौकिक व्यवहार में आने वाली उपयोगी सुख सम्पदा का क्षण मात्र में उपलब्ध कर देने का वर्णन दो स्थलों पर स्पष्ट रूप से किया गया है। जगत जननी सीता जी ऋद्धियों-सिद्धियों को आज्ञा देकर बरात की आव-भगत जनकपुर में करने के लिये भेजती हैं। जिस समय अवधपति दसरथ जी जनकपुर बरात सहित पहुँचने वाले हैं —

जानी सिय बरात पुर आई।
कछु निज महिमा प्रगटि जनाई॥
हृदयँ सुमिरि सब सिद्धि बोलाई।
भूप पहुनई करन पठाई॥
सिधि सब सिय आयसु, अकनि
गई जहाँ जनवास।
लिये सम्पदा सकल सुख,
सुरपुर भोग बिलास॥

दूसरा उदाहरण भरत जी की पहुनाई (सत्कार) में भरद्वाज मुनि ऋद्धियों-सिद्धियों द्वारा पलमात्र में सम्पूर्ण साथ आये अयोध्यावासियों के लिये यथा योग्य सुन्दर घर, भोजन इत्यादि का प्रबंध करा दिया।

मुनि रिधि सिधि अनिमादिक आई।
आयसु होइ सो करहिं गोसाई॥
× × ×
पहुनाई करि हरहु श्रम।
कहा मुदित मुनिराज॥
× × ×
कहहिं परसपर सिधि समुदाई।
अतुलित अतिथि राम लघु भाई॥
× × ×
असकहि रचेउ रुचिर गृह नाना।
जेहि बिलोकि बिलखाहिं बिमाना
योग विभूति भूरि- भरि राखे।
देखत जिन्हहि अमर अभिलाखे॥

यथार्थ रूप में श्री राम चरित्र मानस के अन्तर्गत केवल एक ही सार तथ्य दिखाई पड़ता है। वह है, श्रीरामचन्द्र द्वारा योग-भ्रष्ट राक्षसों का वध करना तथा योग के

एक-एक अंगों का सुचारु रूप से पालन करने वाले मुनि जनों को निर्विघ्न होकर साधना करने की प्रेरणा देना। अनेक योगी जो अपने इष्ट रूप राम के मन में मन बुद्धि में बुद्धि अहम् में अहम् खोकर भक्ति के सर्वोत्कृष्ट उदाहरण को प्रतिपादित करते थे। ऐसे भक्त योगियों को विघ्नों से बचाना भक्तवत्सल भगवान राम अपना परम् धर्म समझते थे। भक्ति, योग का एक मुख्य अंग है। श्री रामचन्द्र जी ने लक्ष्मण को भक्ति का जहाँ उपदेश दिया है, वह, अन्तिम चौपाई में गोस्वामी जी भक्ति को योग की संज्ञा देकर प्रतिष्ठित करते हैं।

भगति जोग सुनि अति सुख पावा।
लछिमन प्रभु चरनन्हि सिरु नावा।।

और यह योग या भक्ति योग बिना गुरु-देव के चरण कमल की कृपा के सम्भव नहीं है क्यों कि उन के चरण नख से एक झलक में उत्पन्न प्रकाश साधारण मानव के हृदय में संप्रज्ञात योग के प्रकाश को उत्पन्न करदेता है।

श्री गुरु पद नख मनि गन जोती।
सुमिरत दिव्य दृष्टि हिय होती।।

तीन मुक्तक

(श्री गौरीशङ्कर द्विवेदी 'शङ्कर')

सुयश, शान्तिहित, जग-जन-जन दिन-रात भटकते;
कर-कर विविध अनर्थ, अर्थ-सुख स्वयम् झटकते।
किन्तु शान्ति, सन्तोष, नहीं मिल पाता उनको,
मृग-तृष्णा वश व्यर्थ, अधर में रहे लटकते।

[२]

केवल धन से, किसे मिल सका है सच्चा सुख,
धन-संग्रह का मोह, बढ़ाता है दारुण-दुख।
दान, भोग ही, सदुपयोग है धन का उत्तम,
सुकृती अपनाकर इस को, करते उज्ज्वल-मुख।

[३]

निज दुख से जन दुखी रहें, दिन-दिन सब राते;
सुजन धन्य, जो पर-पीड़ा में हाथ बँटाते।
जग-यश सचमुच, परोपकार से ही है संभव;
'शङ्कर' साधक, सिद्ध, सदा इस को अपनाते।

क्या एक गृहस्थी योगी बन सकता है ?

(चौधरी रामदास बी०ए० बिलावर, कठुआ जम्मू-कश्मीर।)

दुनिया में भारतवर्ष प्रारम्भ से ही अपनी संस्कृति, सभ्यता और ऊंचे आदर्शों के लिए अति प्रसिद्ध है। इस के विषय में हमारी ऐतिहासिक पुस्तकें काफी प्रकाश डालती हैं। प्राचीनकाल में लोग अपने पूर्वजों के बताए हुए मार्ग पर चलने में गौरव अनुभव करते थे। और यही बात उनकी खुशहाली व प्रसन्नता का कारण थी। अपनी जिन्दगी के सैकड़ो वर्ष इस नश्वर संसार में व्यतीत करने के पश्चात् वे शान्ति के साथ रुखसत होते थे। अपने मन, शरीर तथा इन्द्रियों पर पूर्ण अधिकार होने के कारण उस समय लोग सैकड़ो वर्षों तक जीवित रहते थे। इसका मुख्य कारण उनका योगाभ्यासी होना था। नेक विचार और स्वच्छ हृदय उनका जीवन सुखी बनाते थे। दूध की नदियां बहती थीं। लोग परिश्रम के साथ रोजी-रोटी कमाते थे। इसलिए भारत को विदेशी मुल्कों में "सोने की चिड़िया" के नाम से पुकारा जाता था। समाज में लोग अनुशासन में रहते थे। बच्चों को शिक्षा भी राष्ट्र व समाज के वातावरण के अनुरूप तथा सभ्यता के अनुसार दी जाती थी। लोग प्रेमपूर्वक, सत्य व निष्ठा के आधार पर रहते थे। सन्तोषी होते थे। वे "चिन्ता चिता है" पर पूरा विश्वास रखते थे। कर्त्तव्यपरायण होने के कारण वे अपना दैनिक कार्यक्रम इस ढंग से बनाते थे कि परेशानी उनके पास फटकने भी न पाती थी।

मनुष्य का ढांचा आत्मा व शरीर से बना है। आवागमन के प्राकृतिक नियम के अन्तर्गत शरीर नष्ट हो जाता है जबकि आत्मा जिन्दा रहती है। यह आत्मा हर मनुष्य में भगवान के ही रूप में है। भगवान श्री कृष्ण ने गीता में कर्म पर ही जोर दिया है। निष्काम कर्म करने से ही मनुष्य भगवान की सेवा करता है। जब भगवान हर इन्सान के भीतर है तो परहित कार्य ही भगवान की सेवा है। इस शरीर को जिन्दा रखने के लिए खुराक वगैरा अति आवश्यक है। अब

प्रश्न यह उठता है कि खुराक कैसी है — तम, रज या सत इन में से सतोगुण या सात्विक खुराक अच्छे विचार पैदा करने तथा मानसिक शान्ति बनाने में सर्वाधिक सहायक सिद्ध होती है। सद् विचार, सात्विक भोजन, सत्यनिष्ठा इत्यादि मनुष्य को भगवान के समीप लाते हैं। जिस ने भी अपने मन को टटोला और अपने मन की जोत को जगाया वह भगवान के प्रकाश से रोशन हुआ। इस दुनिया में कर्म को सब से ऊपर माना गया है। साधु, सन्त व फकीर दुनिया को छोड़ कर बेशक जंगलों में भगवान की तलाश में भटकते फिरते हैं यहां तक कि उनको भी अपनी इच्छाओं पर काबू पाना कठिन है। मगर इस से भी कठिन एक गृहस्थी की रोजमर्रा की जिन्दगी में अपनी इच्छाओं, इन्द्रियों, मन और हृदय पर काबू पाना है। जंगलों में फकीरों को कर्म और रोजमर्रा के लेन-देन से वास्ता नहीं होता मगर एक गृहस्थी की रोजमर्रा की जिन्दगी में उसके कार्यों से ही उस के विचारों का पता चलता है। इन विचारों से हम अच्छे या बुरे व्यक्ति को पहचानते हैं। इसी कारण एक गृहस्थी ही अच्छा योगी हो सकता है बशर्ते कि वह योग के उपरोक्त वर्णित रास्ते पर चले।

घृणा, नफरत, भौतिकता, तामसिक भोग व नास्तिक विचार विश्व में शान्ति को भंग करते हैं। ऐसे बुरे रास्तों से मानवता दुःखी होती जा रही है। प्रेम, सद्भावना व सात्विक विचारों आदि से मनुष्य इस बंध-रूपी संसार से अपनी जीवन-नैया साहिल पर लगा सकता है। "स्वयं भी जीओ तथा दूसरों को जीने में सहायता करो" के नेक नियम पर चलकर ही एक गृहस्थी योगी बन सकता है।

आजकल नव-पीढ़ी बुजुर्गों के बताए हुए रास्ते पर नहीं चल रही है। हाथ, पाव, आंखें, दिल्लोदिमाग और मन हर वक्त उल्टे सीधे रास्ते से पैसा कमाने के लिए तड़पते रहते हैं। आजकल पैसा ही भगवान है। लोग एक दूसरे से धन की धुन में कोसों दूर होते जा रहे हैं। मानवीय कद्रें अपना दम तोड़ रही हैं मगर बाजूद इसके हम लोग अभी भी जात-पात, छुआछूत, प्रदेशीय झगड़ों, भाषा की समस्या और सम्प्रदायिकता के चक्कर में ही पड़े हैं। इन्सान और इन्सान के मध्य में बनी हुई खाड़ी को पूरा करने के लिए मानवीय कद्रों को उजागर नहीं किया जा रहा है। चरित्र और आदर्श हमारे जीवन का लक्ष्य नहीं रहा। सादा जीवन, सादा खुराक व ऊँचे विचार जो कि एक योगी की बेहतरीन खुराक हैं और जिससे साधारण गृहस्थी आजकल की दुनिया में सुखी जीवन व्यतीत कर सकता है, दिन-ब-दिन कम होते जा रहे है। फिर भला हम कैसे योगी बन सकते हैं- जिन्दगी में सुख की सांस ले सकते हैं- और

संसार में मानवता की मशाल को प्रकाशित कर सकते है ?

आज दुनिया में मानवता चौराहे पर खड़ी है। समाज चरित्रहीनता, सोशल बुराइयों और आध्यात्मिक गिरावट से पीड़ित है। अगर मनुष्य ने उपरोक्त वर्णित मार्गों पर चलकर योगी बनने की कोशिश नहीं की, असलियत और सच्चाई के मार्ग पर चलने की दिल में तमन्ना पैदा न की, तामसिक भोजन को तिलांजलि न दी और मानव को मानव न समझा तो नामालूम फिर मनुष्य संसार में सुखी कैसे रह सकता है लिहाजा एक गृहस्थी सही रास्तों को अपनाता हुआ ईश्वर के प्रकाश से रोशन हो सकता है और हृदय की महानता और छिपी हुई शक्ति को उजागर कर के योगी बन सकता है।

मरना भला है उसका
मरता है सब के लिए जो।
जीना भला है उसका
जीता है कौम के लिए जो॥

समझा जिसने तुम्हें

(श्री एम. मालपाणी)

समझा जिसने तुम्हें, तुम्हीं से उसका एकाकार हो गया।
सूरज, चांद, सितारे, धरती, सब सीमा में निहित सदा से,
पवन, अनिल, जल, एक रूप हो, कण-कण में हैं व्याप्त सदा से,
पर जिसकी लौ लगी तुम्हीं से, श्वासों का व्यापार हो गया।

हर मत का मन्तव्य एक ही, एक सभी धर्मों की शिक्षा,
कपटी जन की स्वार्थ-साधना, सन्तों की बस एक परीक्षा,
जिसने भी संयम से परखा, वह सुख का अम्बार हो गया।

भाँति-भाँति के आडम्बर हैं, भाँति-भाँति के हैं बन्धन भी,
'सत्य' एक ही रहा, रहेगा, पर चलता रहता मन्थन भी,
जो मन से बच सका, तुम्हारा उसको ही आधार हो गया।

समझ सका जो भी सेवा को उसका ही कल्याण हुआ है,
बन कर मनुज दीन अरु सेवक 'मानव' से 'भगवान' हुआ है,
जो भी देख सका अन्तर में; उसे लक्ष्य साकार हो गया।

संगीत की योगात्मक पृष्ठ भूमि

(श्री पं गिरधर शर्मा संगीताचार्य, निर्देशक, गोपाल संगीत एकादमी, सहारनपुर)

भारतीय दर्शनकारों ने मानव जीवन के परमलक्ष्य को "आत्म साक्षात्कार" अथवा "आत्मलाभ" में निहित मानते हुए ही यह कहा है कि "आत्मलाभान्न परं विद्यते"। वास्तव में मानव जीवन का सार ही आत्मोपलब्धि में ही है। शास्त्रकारों ने आत्मा का निर्माण पंच कोषों से माना है-(१) अन्नमय कोष, (२) प्राणमय कोष, (३) मनोमय कोष (४) विज्ञानमय कोष तथा, (५) आनन्दमय कोष। अन्नमय कोष तथा प्राणमय कोष तो सभी जीव-जन्तुओं में सामान्य रूप से पाया जाता है किन्तु शेष तीन कोष, अर्थात् मनोमय कोष, विज्ञानमय कोष, और आनन्दमय कोष, केवल मानव जाति के लिये ही अपूर्व देन है। "आत्मोपलब्धि" "आत्म - साक्षात्कार" अथवा "परम तत्व" का साक्षात्कार कराने का कार्य इसी आनन्दमय कोष का है- इसी कारण आनन्दमय कोष, को सर्वाधिक महत्व पूर्ण माना गया है। इसी परमानन्द स्वरूपी सारभूत तत्व को पाकर जीव निहाल हो जाता है। अस्तु, तैत्तरीय उपनिषद् में दी गई निम्नलिखित परमानन्द की मीमांसा का यही सार है :—

"रसो वै सः। रसह्येवायं लब्ध्वा आनन्दी भवति। को ह्येवान्यात कः प्राण्यात् यदेष आकाश आनन्दो न स्यात्। एष ह्येवानन्दयाति"।

इसी आत्मानन्द की प्राप्ति का सुगम माध्यम संगीत है। भारतीय परम्परा में अध्यात्म और संगीत का सम्बंध अभेद एवं अटूट रहा है। भारतीय दृष्टिकोण के अनुसार संगीत थके हुऐ मस्तिष्क के मनोरंजन का साधन नहीं, अपितु ईश्वर की अराधना का मंगलमय साधन बनकर साधक के परम मंगल का जनक बनता है। नारद जी की वीणा से लेकर मध्य कालीन भक्त कवियों तक संगीत ही ईश्वराराधन का एक मात्र माध्यम रहा है। आजकल भी देवालयों के आरती पूजन तथा सत्संग आदि में सामूहिक संकीर्तन से मनोलय की प्राप्ति कराने वाला साधन संगीत ही है। प्राचीन काल में भी ऋषि-मुनियों ने नैत्यक आराधना एवं स्तोत्रगानादि द्वारा मोक्ष प्राप्ति का साधना संगीत को ही रखा जिसे मार्गी संगीत की संज्ञा प्राप्त हुई। संगीत शास्त्रकारों का मत संगीत-कला के संबंध में अत्यन्त स्पष्ट है :—

"विश्रांतिर्यस्य संभोगे सा कला न कला मता।
लीयते परमानन्दे ययात्मा सा परा कला।"

अर्थात् सारांश यही है कि परमानन्द में लय कराने वाली कला ही संगीत का वास्तविक रूप है।

संगीत की योगात्मक पृष्ठ भूमि को खोजने के लिये हमें भारतीयों की उस धर्मभावना और भारतीय मनीषियों की उस अन्तर्भावना से प्रेरणा लेनी होगी जो विश्व की समस्त प्रक्रियाओं में अध्यात्म को ही खोजने एवं देखने का प्रयास करते थे। प्राचीन काल में साम-गान यज्ञों का अभिन्न अगं होता था। इस का उद्देश्य जन साधारण का मनोरंजन नहीं था वरन् विश्व को यंत्रवत् संचालित करने वाली अव्यक्त शक्ति की आराधना का ही ध्येय था। प्राचीन समय में गीतों की धूनों का आध्यत्मिक साधना के माध्यम के रूप में प्रयोग वैदिक संगीत अथवा सामवेद की विशेषता थी। ऐसे मोक्ष की ओर लेजाने वाले संगीत को ही "मार्गी" संगीत कहते हैं। देवताओं की प्रसन्नता के लिये ऋग्वेद का ऋचाओं का गान जहाँ आवश्यक न हो वरन अनिवार्य माना गया है वहां संगीत भी उन ऋचाओं के गान के लिये अनिवार्य माना गया है। इसी से साम-गान को संगीत परम्परा परम तत्व की साधना का माध्याम होने के कारण श्रेष्ठ मानी गई है। इसलिये "गायन्ति य सामगा:" का लेख मिलता है। ओंकार का संगीत प्रारंभ से ही कैसे रसात्मक हो इसका विचार प्राचीन संगीतकारों की दृष्टि में अत्यंत महत्वपूर्ण रहा है।

वैदिक काल में साम संगीत अथवा मार्गी संगीत के साथ साथ लोक संगीत भी प्रचलित था। लोक संगीत का ध्येय अधिकतर मनोरंजनका ही होने के कारण इसे निम्न श्रेणी का माना जाता था। समयान्तर से राजसभाओं एवं अन्यगोष्ठियों में मान्यता पाने वाला एवं मनोरंजन की दृष्टि से गाया जाने वाला तथा आध्यात्मिक पृष्ठ भूमि से रहित एवं विलास प्रिय प्रवृत्तियों को प्रोत्साहित करने वाला संगीत का यह रूप साम संगीत अथवा मार्गी संगीत से नितान्त भिन्न होने के कारण गांधर्व अथवा देशी संगीत कहलाया।

प्राचीन विज्ञजनों ने इस गांधर्व संगीत को अध्यात्म की ओर मोड़ने का प्रयास किया था। योग शास्त्रकारों ने समस्त सृष्टि की उत्पत्ति नाद से मानी है और इसी से नाद को नाद ब्रह्म की संज्ञा दी गई है। परम तत्व ब्रह्म का स्वरूप भी नादमय है ऐसा लेख भी मिलता है। नाद की भिन्न भिन्न विधियों का रहस्य परमानन्द में विलीन होने में है। आहत नाद को अनाहत नाद की ओर लेजाने की क्रिया योग मार्ग के अन्तर्गत नादानुसंधान और लय योग की विशेष साधना है। योग शास्त्रकारोंके मतानुसार नादोपासना ईश्वर प्रणिधान का सर्वश्रेष्ठ साधन है यथा "नास्ति नाद सदृशो लय:"।

स्थूल के माध्यम से सूक्ष्म का साक्षात्कार भारतीय दर्शन की विशेषता है। मूर्त्ति पूजा और मार्गी संगीत कला का भी यही रहस्य है। इसी विशेषता के कारण संगीत कला को ऋषियों मुनियों, दार्शनिकों शैव शाक्त वैष्णव भक्तों द्वारा समान रूप से आदर प्राप्त है।

जीवन और मृत्यु

(श्री 'दिव्य')

जिस दिन मैंने जन्म लिया था जिस दिन मैंने जीवन पाया।
मृत्यु प्रेयसी ने भी हँसकर मुझे उसी दिन से अपनाया॥

× × ×

मेरी आयुष की माला में स्वांसों के सुन्दर से मोती।
जीवन देता रहा नियति हँस-हँसकर उनको गयी पिरोती॥

× × ×

किन्तु मृत्यु ने साथ-साथ ही लेकर उन्हें मसल डाला है।
स्वांसों की जो मिली धरोहर उसने उसे कुचल डाला है॥

× × ×

मेरी द्वार-देहरी पर ही दोनों का व्यापार रहा है।
क्षण-क्षण में लेने-देने का दोनों में व्यवहार रहा है॥

× × ×

'जीवन' और 'मृत्यु' दोनों कब होकर अलग-अलग चलते हैं।
दोनों मेरे साथ-साथ हैं दोनों आस-पास पलते हैं॥

× × ×

इसी लिए तो मुझे 'मृत्यु' से सच मानो कुछ द्रोह नहीं है।
और सत्य है यह भी मुझको 'जीवन' से कुछ मोह नहीं है॥

× × ×

मोह-द्रोह का इन दोनों में मुझे न भेद-भाव भाता है।
दोनों से ही इस दुनिया में मेरा जन्म जात-नाता है॥

अनुपम सद्गुरु

हे सद् गुरुदेव आप सचमुच अनुपम हो। कोई ऐसा उपमान नहीं जिसे आपकी उपमा में लाकर खड़ा किया जा सके। समर्थ स्वामी रामदास के शब्दों में—

आपकी अगाध ज्ञान-गरिमा की उपमा यदि सागर से दी जाय तो यह ठीक नहीं क्योंकि समुद्र खारी होता है।

यदि क्षीर-सागर से उपमा दी जाय तो कल्पान्त में उसका भी अन्त हो जाता है। अतः यह भी ठीक नहीं।

यदि मेरु से उपमा दी जाय तब भी उचित नहीं क्योंकि वह जड़ और कठोर पाषाण है। जब कि आप सद् शिष्यों के लिए अत्यन्त ही कोमल हृदय वाले हैं।

यदि सूर्य्य के प्रकाश से आपकी ज्ञान-राशि की उपमा दी जाय तब भी अनुपयुक्त है। क्योंकि शास्त्र सूर्य्य प्रकाश की भी एक मर्यादा बताते हैं पर आपका ज्ञान और तेज पुंज दोनों ही अमर्यादित है।

यदि जल से उपमा दी जाय तो अन्त में वह भी सूख जाता है जब कि आपका अनन्त ज्ञान-स्रोत, सदा प्रवाहित रहता है।

जिनके मन में कुछ चिन्ता ही नहीं है— वहाँ चिन्तामणि को कौन पूछेगा। अतः उससे भी कैसे आपकी तुलना की जाय।

यदि कल्पतरु से आपकी उपमा दी जाय तब भी ठीक नहीं क्योंकि आप कल्पनातीत हैं।

अमृत पीने वाले भी मरण-मार्ग का अवलम्बन करते हैं अतः उससे भी आपकी उपमा कैसे दी जाय जब कि आपका ज्ञानामृत पान करने वाले न कभी मरे हैं न मरेंगे। अतः आप सचमुच अनुपम हैं, अज्ञेय और अगम्य हैं।

(एक शिष्य)

जाने तुम्हहि तुम्हहिं हुइ जाई

मुद्रक—देवीप्रसाद शर्मा 'दिव्य', कर्मयोग प्रिंटिंग प्रेस, बसई कलां ताजगंज आगरा—१